वसंत

महात्मा गांधी संस्थान (मॉरीशस) की पत्रिका

१५७

जिस भाषा में बोलती तुलसी की रामायण
मीरा करती जिसमें कृष्ण प्रेम के गायन
हमारे माथे की है संस्कृति की बिन्दी
हमारी पहचान की भाषा हमारी हिन्दी

- अभिमन्यु अनत

महात्मा गांधी संस्थान

भारतीय जनरल

प्रधान मंत्री

Prime Minister

संदेश

भाषा सहोदरी- हिन्दी द्वारा 9 से 11 जनवरी 2023 तक नौवें अंतरराष्ट्रीय हिन्दी अधिवेशन के मॉरीशस में आयोजन के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई। अधिवेशन के लिए प्रासंगिक विषयों का चयन व पत्रिका का प्रकाशन सराहनीय है।

कहा गया है- 'भाषा विश्वं योजयति' अर्थात् भाषा ही विश्व को जोड़ती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की विशेष पहचान और भारतवंशियों को एकता के सूत्र में जोड़ने में हिन्दी की भूमिका अतुलनीय रही है।

हिन्दी का समृद्ध साहित्य और इसकी सरलता व सहजता इसे जन-जन के मन में बसाने का कार्य करती है। यह देखकर सुखद अनुभूति होती है कि विश्व के विभिन्न देशों में हिन्दी भाषा सीखने वाले लोगों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। हमारी गौरवशाली संस्कृति व संस्कारों को विभिन्न माध्यमों से दुनियाभर में पहुंचाने में हिन्दी का बड़ा योगदान रहा है।

देश की आजादी का अमृत काल हम सभी के लिए आत्मनिर्भर व भव्य भारत के विराट संकल्पों की सिद्धि के लिए जी-जान से कार्य करने का कर्तव्य काल है। ऐसे में लोगों के बीच आपसी संवाद व परस्पर समझ को मजबूत करने में हिन्दी भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

मुझे विश्वास है कि नौवें अंतरराष्ट्रीय हिन्दी अधिवेशन में हिस्सा ले रहे सभी लोगों के बीच हिन्दी भाषा के विकास व इससे जन-जन को जोड़ने पर विचारपूर्ण चर्चा होगी जिसका सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलेगा।

नौवें अंतरराष्ट्रीय हिन्दी अधिवेशन में हिस्सा ले रहे सभी हिन्दी प्रेमियों को बधाई व हार्दिक शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
पौष 05, शक संवत् 1944
26 दिसंबर, 2022

वसंत

अस्मिता और सर्जना का त्रैमासिक

संपादकीय संपर्क
डॉ लक्ष्मी झमन
मुख्य संपादक, वसंत/रिमझिम
सृजनात्मक लेखन एवं
प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी संस्थान, मोका
मॉरीशस
creativewritingdept@gmail.com
Phone : 4032022
Fax : 4332164

वसंत में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार तथा दृष्टिकोण लेखकों के हैं, इसके लिए संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

पत्रिका विवरण
वर्ष ४५ (२०२३), अंक १५७
एक प्रति – ३५ रु, विदेश 2 USD

वसंत पत्रिका से संबंधित किसी भी तरह के विवाद मॉरीशस-न्यायालय के अधीन ही मान्य होंगे ।

मुख्य संपादक
डॉ लक्ष्मी झमन
वरिष्ठ प्राध्यापिका एवं अध्यक्षा
सृजनात्मक लेखन एवं
प्रकाशन विभाग

उपसंपादक
श्रीमती श्रीति रामपल
सृजनात्मक लेखन एवं
प्रकाशन विभाग

प्रकाशक
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

मुद्रक
विक्रम शिवतोहल

टाइप सेटिंग
दिशा बहादुर

आवरण सज्जा
विक्रम शिवतोहल

वेबसाइट
https://www.mgirti.ac.mu
©Mahatma Gandhi Institute Mauritius
ISSN 1694-4100

अनुक्रम

संपादकीय	- डॉ. लक्ष्मी झमन	- 3
रिपोर्ट		
प्रॉ.डॉ. मीना घुमे मॉरीशस में "सहोदरी सम्मान" से सम्मानित	- एस. एन. चतुर्वेदी	- 7
हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक	- डॉ. साकेत सहाय	- 9
शोध-पत्र		
सांस्कृतिक एवं चारित्रिक पर्यावरण प्रदूषण	- डॉ. अशोक पण्ड्या	-13
यूँ ही नहीं हो गई हिंदी वैश्विक भाषा	- डॉ. अशोक पण्ड्या	-16
हिंदी साहित्य में सोशल मीडिया और उनकी स्थिति	- अमित कुमार गुप्ता	- 20
लेख		
जन-संचार पत्रकारिता	- करिश्मा देवी रामझीतन	- 25
राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी	- गोवर्द्धन यादव	- 32
कविता		
भाषा	- देवी नागरानी	- 37
गोवर्धन सिंह फ़ौदार की दो कविताएँ		
चलो चलें गाँवों की ओर / शराब		- 38
समीक्षा		
मन्नू भंडारी द्वारा लिखित "रानी माँ का चबूतरा" कहानी में नारी	- करिश्मा देवी रामझीतन नारायण	-39
सारा शगुफ्ता का कांटेदार पैरहन - अमृता प्रीतम की ज़ुबानी	- देवी नागरानी	- 42
आधुनिक परिदृश्य और भगवानदास मोरवाल का कथा साहित्य	- प्रॉ. डॉ. बलराम गुप्ता	- 47
महादेवी वर्मा कृत 'जीवन विरह का जलजात!' के मूल भाव	- विश्वानन्द पतिया	- 56
कहानी		
आत्म-विश्वास	- बिदवंती शंभू	- 59
यात्रा-वृतांत		
थाईलैंड में समुद्र मंथन	- गोवर्धन यादव	- 63
निबंध		
दीपावली	- डॉ. लक्ष्मी झमन	- 66

संपादकीय

\- **डॉ लक्ष्मी झमन**

किसी भी कार्य को सर्वसमर्थन तभी प्राप्त होता है जब उसमें शोध का पुट हो क्योंकि शोध यह प्रमाणित करता है कि व्यक्ति संसार की गतिविधियाँ एवं जीवन के अद्यतन संदर्भ से जुड़ा हुआ है।

किसी सम्मेलन में जब भी शोधपत्र प्रस्तुत किया जाता है तो उसके माध्यम से समाज में निहित समस्याओं को उजागर किया जा सकता है और साथ ही उन समस्याओं का निवारण करने के लिए शोधकार्य लाभदायक सिद्ध हो सकता है। शोधपत्रों के माध्यम से सब अपने विचारों का आदान-प्रदान तो करते ही हैं परंतु यह भी निर्विवाद है कि शोधपत्र देश-विदेश के बीच हमारे अंतरराष्ट्रीय संबंधों को भी पुष्ट करता है।

साहित्य अपने-आप में एक दुनिया है। जिस प्रकार एक व्यक्ति पूरे विश्व में भ्रमण करता है तो उसे बहुत सारी जानकारियों की प्राप्ति होती है, उसी तरह जितना हम साहित्य रूपी गंगा की गहराई में जाएँगे उसमें उतना ही ज्ञान प्राप्त करेंगे। इस दृष्टि से शोधपत्र ऐसी सशक्त विधा है जिसके उपयोग से हम समाज की ज्वलंत समस्याओं को जनता के समक्ष ला सकते हैं तथा जनता में जागृति पैदा कर सकते हैं। शोधपत्र में जिन समस्याओं का उल्लेख किया गया हो उन सब पर गहन रूप से चिंतन-मनन करके उन सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन का पूर्ण प्रयत्न किया जा सकता है। लेखक का प्रयास रहता है कि शोधपत्र में प्रस्तुत विषय का यथार्थपरक चित्रण किया जाय ताकि वह पाठकों के हृदय तक अपनी बात पहुँचा सके। लेखनी द्वारा जागरूकता लाना परमावश्यक है। लेखनी की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में मैथिलीशरण गुप्त का कथन इस प्रकार है :

हाँ, लेखनी हृतपत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा।
स्वच्छंदता से कर तुझे करने पड़े प्रस्ताव जो
जग जाएँ तेरी नोक से सोये हुए हों भाव जो।

(अतीत खंड, भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त)

शोधकर्ता के लिए उसकी कलम ही उसका अस्त्र होता है जिसके द्वारा वह समाज में व्याप्त विसंगतियों का यथार्थ एवं समाज की वास्तविकता को दर्शाने का प्रयास करता है। शोधपत्र की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि शोधकर्ता इसमें अपनी मौलिकता का प्रमाण देता है।

शोधपत्र के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों का पर्दाफाश करना अपने आप में बहुत बड़ी बात होती है और अगर शोधपत्र में निर्भीकतापूर्वक छल-कपट, भ्रष्टाचार आदि का खंडन कर दिया जाए तो सोने में सुहागा। शोधपत्र की कीमत उस समय और भी बढ़ जाती है जब उसमें विचार स्वातंत्र्य तथा उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पूरा अधिकार शोधपत्र के प्रस्तुतकर्ता को सम्मेलनों में प्राप्त होता है। प्रत्येक नागरिक को विचार और भाषा की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है परंतु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अपने शोधपत्र के माध्यम से भाषण स्वातंत्र्य के बहाने हम दूसरों की भावनाओं को ठेस न पहुँचाएँ तथा समाज में द्वेष न फैलाएँ।

किसी भी शोधपत्र के महत्त्व में चार चाँद लग जाते हैं जब उसमें निहित विचार सुंदर एवं आकर्षक हों तथा उसे प्रस्तुत करते समय शोधकर्ता दर्शकों का हृदय जीत ले। शोधपत्र प्रस्तुत करते समय यथेष्ट सजग एवं जागरूक रहना हमारा कर्त्तव्य बनता है ताकि हम नवीनतम तथ्यों से सबको अवगत करा सकें। वही शोधपत्र श्रेष्ठ है जिससे सुननेवालों का कल्याण हो।

शोधपत्र प्रस्तुत करने हेतु जब हम देश-विदेश की यात्रा करते हैं तो निस्संदेह हमें असीम आनंद की अनुभूति होती है। लेखक की बौद्धिक क्षमता का विकास तो होता ही है तथा उसकी सृजन-कला में भी वृद्धि होती है। किसी भी समाज में सम्मेलनों में शोधपत्रों के द्वारा प्रस्तुत किए गए क्रांतिकारी विचारों द्वारा परिवर्तन व सुधार अवश्य लाया जा सकता है। शोधपत्र अभिव्यक्ति की कला को उभारने का स्वर्ण अवसर प्रदान करता है। अगर प्रस्तुतकर्ता प्रतिभाशाली व प्रबुद्ध हो और निर्भीकतापूर्वक बोल सकता है तो लोगों के मानस-पटल पर उसके शोधपत्र का प्रभाव चिरस्थायी रहता है। अतः शोधपत्र की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब वह जन-मानस को छूकर हरेक को प्रस्तुत किए गए विषय पर सोचने के लिए बाध्य कर देता है।

हिन्दी साहित्य बहुत विस्तृत है और उस जगत में लेखकों की कमी नहीं है। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हिन्दी जगत की सृजन-कला में विराम लगा दिया जाय। चूंकि हम हिन्दी जगत से जुड़े हुए हैं, इस जगत के भंडार से अनभिज्ञ नहीं है। समय समय पर सम्मेलनों में शोधपत्र प्रस्तुत करके, शोध द्वारा अपने ज्ञान के भंडार में वृद्धि तो लाते ही हैं पर साथ ही शोधकर्ता के रूप में औरों के साथ अपना ज्ञान दूसरों के साथ भी बाँट पाते हैं। शोधकार्य करने के लिए जानकारियों के भंडार का होना अत्यंत आवश्यक है। जानकारियों को एकत्र करके उनको पुष्ट करने के पश्चात् ही उन्हें शोधपत्र में सम्मिलित किया जाता है। शोधपत्र के अंतर्गत अनेक माध्यमों से जानकारियाँ इकट्ठी करनी पड़ती है। प्रमुख रूप से हम शोधपत्र को प्रासंगिक बनाने के लिए अद्यतम उपकरणों का सहारा लेते हैं। प्रौद्योगिक उपकरण के बिना तो आजकल

शोधकार्य सम्पन्न किया ही नहीं जा सकता। इसलिए हम सभी इस क्षेत्र में कंप्यूटर का प्रयोग करते हैं जो टंकन के तो काम आता ही है पर साथ ही इंटरनेट के माध्यम से गूगल, विकिपीडिया आदि द्वारा अनेक विषयों पर आधारित शोध आसानी से किया जा सकता है।

हर साल 10 जनवरी को पूरे विश्व में हिन्दी दिवस मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए जागरूकता पैदा करना तथा हिन्दी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करना है। विदेशों में भारत के दूतावास इस दिन को विशेष रूप में मनाते हैं। भारतीय दूतावासों में विभिन्न विषयों पर हिन्दी में व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं। विश्व में हिन्दी का विकास करने और उसके प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से विश्व हिन्दी सम्मेलनों की शुरुआत की गई और प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित हुआ था। इसलिए इस दिन को विश्व हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी भाषा का सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन है। इस सम्मेलन में विश्व भर के हिन्दी के विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, भाषा विज्ञानी, विशेषज्ञ एवं हिन्दी प्रेमी जुटते हैं।

इसी शृंखला में भाषा सहोदरी हिन्दी न्यास प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस का आयोजन करता है। इस वर्ष भाषा सहोदरी हिन्दी न्यास, नई दिल्ली एवं महात्मा गांधी संस्थान के संयुक्त तत्त्वाधान में नौवाँ अंतरराष्ट्रीय हिन्दी अधिवेशन दिनांक 10 जनवरी 2023 को महात्मा गांधी संस्थान के सभागार (ओडीटोरियम) में सम्पन्न हुआ। हमारे देश में सम्पन्न इस अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन में भारत एवं मॉरीशस के शिक्षाविद्, शोधार्थी शिक्षक, प्राध्यापकगण, लेखक, पत्रकार, साहित्यकार एवं भारतीय प्रवासियों ने भाग लिया। भाषा सहोदरी के अध्यक्ष श्री जयकान्त मिश्रा जी ने इस दो दिवसीय सम्मेलन का संचालन किया। महात्मा गांधी संस्थान के हिन्दी विभाग की पूर्व अध्यक्षा डॉ. अंजलि चिंतामणि इस अधिवेशन की समन्वयिका रही। इस अधिवेशन के द्वारा हम मॉरीशसवासियों को भारतीय साहित्यकारों से संपर्क करने का तथा विचार विमर्श का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ।

भाषा सहोदरी हिन्दी भारत का एक ऐसा संगठन है जो लंबे समय से हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान देता चला आ रहा है। यह एक पंजीकृत न्यास है जो हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए समर्पित है। इसकी स्थापना सन् 2012 में हुई थी।
पाठकों की जानकारी के लिए पूर्व में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलनों की सूची दी जा रही है–
पहला – 10 से 22 जनवरी 1975 नागपुर (भारत)
दूसरा – 28 से 30 अगस्त 1976 (मॉरीशस)

तीसरा – 28 से 30 अक्टूबर 1983 (नई दिल्ली)
चौथा – 2 से 4 दिसंबर 1993 (मॉरीशस)
पाँचवा – 4 से 8 अप्रैल 1996 (त्रिनिदाद एण्ड टोबेको) (पोर्ट ऑफ स्पेन)
छठा – 14 से 18 सितंबर 1999 (लंदन)
सातवाँ – 6 से 9 जून 2003 (सूरीनाम)
आठवाँ – 13 से 15 जुलाई 2007 न्यू यॉर्क (अमेरिका)
नौवाँ – 22 से 24 सितंबर 2012 (जोहानसबर्ग)
दसवाँ – 10 से 12 सितंबर 2015 (भोपाल)
ग्यारहवाँ – 18 से 20 अगस्त 2018 (मॉरीशस)
बारहवाँ – 15 से 17 फरवरी 2023 (फीजी)

12वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन, 15-17 फरवरी 2023 को (नादी) फ़िजी में आयोजित हुआ जिसका मुख्य विषय 'हिन्दी पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' रखा गया था। यह गर्व की बात है कि भाषा सहोदरी की ओर से अब तक आठ अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। 9 से 15 जनवरी 2023 को नौवाँ अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन का आयोजन मॉरीशस के साथ मिलकर किया गया। दोनों देशों की संस्थाएँ हिन्दी भाषा, सांस्कृतिक विरासत, कलाओं के अनुसंधान एवं संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत हैं। यह उल्लेखनीय है कि भाषा सहोदरी का दसवां अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन जनवरी 2024 में दुबई में होगा।

आई तू जिस देश से, बहती वहाँ अविरल पावन गंगा
स्नेहमयी, ममतामयी, है अपनी निर्मल हिन्दी भाषा
इतिहास हमारा सुनाता सदा, तेरे संघर्ष की गाथा
उत्थान व विकास की जननी तू, तेरे आगे सब टेके माथा
तेरे आसरे गिरमिटियों ने जीने का, यहाँ जुटाया साहस
आएगा नया उज्ज्वल सवेरा, देती रही तू उनको ढाढस
ईमानदारी, सहिष्णुता, परिश्रम, त्याग का तेरा आह्वान
प्रज्ञा तू जो बरसाए, हो जाए हर समस्या का समाधान
अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध तू ने मचाई जब-जब क्रांति
धर्म-संस्कृति सुरक्षित तब तब, तू तो अपनी संजीवनी-शक्ति
स्नेह की डोर लिए तेरे मीठे शब्द, फैलाए सब ओर सौहार्द
सीखे कोई तुझसे क्या होता है भाषा का उदात्त औदार्य
वसंत पत्रिका हुई गर्वोन्नत, खिले उसमें तेरे वर्णों का सौन्दर्य

रिपोर्ट

प्रॉ.डॉ. मीना घुमे मॉरीशस में "सहोदरी सम्मान" से सम्मानित

- एस. एन. चतुर्वेदी

भाषा सहोदरी हिंदी न्यास, नई दिल्ली एवं महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस के संयुक्त तत्वाधान में नौंवा अंतरराष्ट्रीय हिंदी अधिवेशन दिनांक 10 व 11 जनवरी 2023 को मॉरीशस में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में लातूर शाखा की भारतीय स्री शक्ति की कार्यकर्ता तथा शहर के दयानंद कला महाविद्यालय की प्रो. डॉ. मीना भाऊराव घुमे का चयन वक्ता के रूप में किया गया। 'हिंदी के उन्नायक महर्षि दयानंद सरस्वती' इस विषय पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए। हिंदी के प्रचार प्रसार में योगदान के लिए उन्हें " सहोदरी सम्मान " उपाधि से सम्मानित किया गया।

मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान के सभागार में अंतरराष्ट्रीय हिंदी अधिवेशन का आयोजन किया गया था। इस संस्थान की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1970 में की गई थी। मॉरीशस में संपन्न इस अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन में भारत एवं मॉरीशस के शिक्षाविद, शोधार्थी, शिक्षक, प्रोफ़ेसर, लेखक, साहित्यकार, पत्रकार, कुलपति एवं भारतीय प्रवासियों ने भाग लिया। अंतरराष्ट्रीय हिंदी अधिवेशन की अध्यक्षता मॉरीशस के महामहिम राष्ट्रपति श्री पृथ्वीराज सिंह रूपन ने की। इस अवसर पर भाषा सहोदरी के अध्यक्ष जयकांत मिश्रा मुख्य संयोजक, मीना चौधरी व महात्मा गांधी संस्थान के अध्यक्ष श्री राजकुमार राम प्रताप व संस्थान के समस्त हिंदी विभाग ने सम्मेलन का आयोजन किया। इस अवसर पर मॉरीशस के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार रामदेव धुरंधर भी उपस्थित थे जिन्होंने मॉरीशस के अनिवासी भारतीयों की पीड़ा को अपने साहित्य में जीवंत किया। हिंदी की वरिष्ठ लेखिका मृदुला सिन्हा द्वारा लिखित गीत "हिंदी हिंदी हिंदी , भारत माँ की बिंदी " गीत गाया तथा भारतीय नृत्य परंपरा में कत्थक नृत्य का प्रदर्शन भी किया गया। इस अधिवेशन में भारत-मॉरीशस मैत्री संबंधों और हिंदी की वैश्विक स्थिति पर चर्चा की गई। इस कार्यक्रम में भाषा सहोदरी हिंदी द्वारा 'सहोदरी पत्रिका ' का लोकार्पण किया गया। भाषा सहोदरी हिंदी एक पंजीकृत न्यास है, जो हिंदी भाषा के उत्थान के लिए समर्पित है। इसकी स्थापना सन् 2012 में हुई थी। गौरतलब है कि भाषा सहोदरी हिंदी भारत का एक ऐसा संगठन है जो लंबे समय से हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार के लिए कार्य कर रहा है। इसका मुख्य कार्यालय मयूर विहार, दिल्ली में स्थित है तथा इसके अध्यक्ष श्री जयकांत मिश्रा है। यह संगठन भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिंदी को स्थापित करने का अभियान चला रही है।
भाषा सहोदरी कुछ उद्देश्यों को लेकर काम करती हैं। १) भारत की सभी लिखित परीक्षाओं एवं साक्षात्कारों में अंग्रेज़ी की वरीयता खत्म हो तथा देश में हिंदी की समुचित रोज़गार व्यवस्था को सुनिश्चित कराना। २) हिंदी को केंद्रीय भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं को अपना अधिकार दिलाने

के लिए प्रयत्न करना। ३) देश में समान शिक्षा लागू हो इसके लिए प्रयत्न करना। ४) भारत देश में बिकने वाली प्रत्येक वस्तु पर हिंदी लागू हो उसके विवरण की छपाई हिंदी में ही हो, के लिए प्रयत्न करना। ५) न्यायपालिका , कार्यपालिका की भाषा हिंदी हो तथा अनुच्छेद 348 में संशोधन हो, के लिए प्रयत्न करना। भाषा सहोदरी की ओर से अबतक 8 अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुए हैं। सात अधिवेशन दिल्ली में लिए गए हैं और आठवां अधिवेशन गोवा में लिया गया जिसका उद्घाटन गोवा के मुख्यमंत्री डॉ. प्रमोद सावंत ने किया।

9 से 15 जनवरी 2023 में नौंवा अंतरराष्ट्रीय अधिवेशन महात्मा गांधी संस्थान मॉरीशस के साथ मिलकर लिया गया। दोनों संस्थाएँ हिंदी भाषा, सांस्कृतिक विरासत, कलाओं के अनुसंधान और संरक्षण को बढ़ावा देती हैं और सुविधा प्रदान करती हैं।

डॉ. मीना घुमे की इस उपलब्धि पर भारतीय स्त्री शक्ति की संस्थापक सदस्या उर्मिला जी, आपटे लातूर शाखा कार्यकारिणी की वरिष्ठ सलाहकार ज्योत्स्ना कुकडे जी तथा कुमुदिनी भार्गव जी, लातूर ज़िलाध्यक्ष, डॉ.जयंती आंबेगवकर जी तथा उपाध्यक्ष प्रेमा बाहेती जी, सदस्य शैलजा कारंडे, ऋता देशमुख, डॉ. सुरेखा काळे, मनीषा टोपरे, संजीवनी सबनीस, डॉ.सुनीता कामदार, विभा बोकिल, सुलोचना ताई नोगजा, उमा व्यास, अनघा आंधोरीकर ऍड . स्मिता परचुरे साथ ही नांदेड शाखा की अध्यक्ष सुरेखा जी, किनगावकर उपाध्यक्ष शालिनी जी, वाकोडकर सचिव डॉ. अर्चना जी, भवानकर, सदस्य, क्षमा करजगांवकर, मेघा कांबळे ऍड प्रतिमा जी बंडेवार सुचिता पेन्सलवार, पल्लवी चन्नावार, जाह्नवी शिऊरकर आदि सभी ने अभिनंदन किया। साथ ही दयानंद शिक्षा संस्था के अध्यक्ष लक्ष्मीरमन जी लाहोटी, उपाध्यक्ष अरविंद जी सोनवणे, ललित भाई शाह, रमेश जी राठी, सचिव रमेश जी, बियानी संयुक्त सचिव सुरेश जी, जैन कोषाध्यक्ष संजय जी, बोरा दयानंद, कला महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. एस.पी. गायकवाड़, उप प्राचार्य डॉ. प्रशांत मान्नीकर, वाइस प्रिंसिपल अनिल माली, सुपरवाइजर डॉ. दिलीप नागरगोजे, हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. प्रदीप सूर्यवंशी, अधीक्षक रूपचंद कुरे, सहयोगी प्राध्यापकों, कार्यालयी कर्मचारी तथा छात्रों ने बधाई दी।

साथ ही भाजपा युवा मोर्चा के प्रदेश सचिव अमोल नागनाथअन्ना निडवदे ने आर्थिक सहायता की घोषणा कर मॉरीशस जाने हेतु मदद की और उन्होंने भी इस उपलब्धि पर डॉ. मीना घुमे जी का हार्दिक अभिनंदन किया है। साथ ही मित्रों तथा परिवार जनों के लिए यह अत्यंत अभिमान की बात है। सो, सभी ने डॉ. मीना घुमे को हार्दिक शुभकामनाएँ देते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की है।

हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक

- डॉ साकेत सहाय

बीते 15-17 फरवरी, 2023 को फिजी में संपन्न १२वें विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय विषय है- 'हिंदी : पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक''। यह विषय बड़ा ही प्रासंगिक है। इस विषय पर विचार करें तो पाएँगे कि हिंदी भाषा को पारंपरिक प्रयोजनों से अधिक आधुनिक प्रयोजनों के लिए तैयार करना ही भाषिक आधुनिकीकरण है और इस प्रकार के सम्मेलनों का उद्देश्य भी यही होता है। दरअसल,भाषा का प्रयोजन विस्तार यथार्थ से जुड़ा हुआ है और कोई भी राष्ट्र, समाज एक निश्चित योजना के तहत ही विविध आवश्यक प्रयोगों या प्रयुक्तियों के माध्यम से यह विस्तार करता है| यही इस सम्मेलन की सार्थकता भी है।
भाषा की सार्थकता भी तभी है, जब वह लोक के व्यापक हितों की पूर्ति करे। प्रौद्योगिकी के प्लेटफार्म पर आरूढ़ भाषा केवल प्रबुद्ध वर्ग का ही भला नहीं करती, अपितु जन-साधारण के भी काफ़ी काम आती है। हिंदी ने अब तकनीक के साथ कंधे से कंधा मिलाने की सामर्थ्य विकसित कर ली है और इसके नित नए-नए अनुप्रयोग भी देखने को मिल रहे हैं। परंतु बहुत कार्य बाक़ी है जिसे व्यवस्था और समाज दोनों को मिलकर करना है।

आज हिंदी बाज़ार और प्रौद्योगिकी के साथ अपने को सशक्त करते हुए कृत्रिम मेधा की भाषा बनने की ओर अग्रसर है। हिंदी विविध प्रयुक्तियों में, यथा, समाचार पत्रों की, बाज़ार की, अर्थ की, खेल, सिनेमा आदि विभिन्न प्रयुक्तियों में व्यवहार की प्रमुख भाषा बनकर उभरी है। कहा गया है जो भाषा तकनीक की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप खुद को ढालती रहती है, वह हमेशा प्रासंगिक और जीवंत बनी रहती है। हिंदी इस मंत्र में दृढ़ विश्वास करती है|

कृत्रिम मेधा ने यह सम्भव कर दिखाया है कि कोई एक भाषा जानने पर भी आप सब भाषा-भाषियों के बीच संवाद, कारोबार कर सकते हैं। इसमें यह उल्लेखनीय है कि हिंदी प्रयोक्ताओं की संख्या ही आज इस भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है, जो अंतरराष्ट्रीय कारोबार में हिंदी को हमेशा केंद्रीय भूमिका में रखेगी। जब मानवीय समझ की बराबरी की बात आती है तो भाषा की महत्ता का प्रश्न तो उठता ही है। भारत के संदर्भ में एआई की सफलता काफ़ी हद तक कृत्रिम मेधा और हिंदी के घनात्मक सम्बन्धों पर टिका हुआ है और इस घनात्मक सम्बंध से काफ़ी लाभ होंगे।

प्रौद्योगिकी का नया दौर कृत्रिम मेधा का ही है। आज वित्त, बैंकिंग, वाणिज्य, कारोबार, शिक्षा, खेलकूद,मनोरंजन, स्वास्थ्य, परिवहन, सोशल मीडिया जैसा कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ कृत्रिम मेधा का इस्तेमाल न हो रहा हो। सर्वियन ग्लोबल सॉल्यूशन के अनुसार वर्ष 2025 के अंत तक ग्राहकों के साथ 95% वार्तालाप कृत्रिम मेधा से संचालित होंगे। स्टेटिस्टिक्स (Statistics) के अनुसार, दुनिया भर में कृत्रिम मेधा (एआई) सॉफ्टवेयर बाज़ार प्रतिवर्ष 54% की दर से बढ़ रहा है और वर्ष 2025 तक इससे प्राप्त होने वाले राजस्व का आँकड़ा 126 बिलियन डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है।

कृत्रिम मेधा के सहयोग से नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेस (प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण) के माध्यम से वार्तालाप को यथासंभव मानवीय और आत्मीय बनाने के उद्देश्य से किया जाता है ताकि ग्राहक को मशीन के साथ संवाद में वास्तविक जुड़ाव का अनुभव हो। भारत में कृत्रिम मेधा से संचालित जनोन्मुखी प्रणालियों के लिए हिंदी व भारतीय भाषाएँ सबसे उपयुक्त विकल्प सिद्ध हो सकती हैं। गूगल, फेसबुक, ई-कामर्स वेबसाइट की कृत्रिम मेधा हमारी पूर्व की गतिविधियों के आधार पर हमारी पसंद या नापसंद का सहज अनुमान लगा लेती है। कृत्रिम मेधा पूर्व के अनुभवों, व्यवहार, विश्लेषण और पैटर्न की पहचान के द्वारा एक विशिष्ट अल्गोरिद्म पर कार्य करती है, अतएव, वेब पर हिंदी का जितना अधिक कंटेट होगा,कृत्रिम मेधा के साथ हिंदी उतनी ही प्रभावी तरीके से कार्य करेगी। भारत में कृत्रिम मेधा का भविष्य सूचना, ज्ञान और आंकड़ों पर आधारित है और इन सब के उपयोग में हिन्दी की भूमिका सिद्ध है।

हिंदी अपने भाषायी गुण, व्याकरणिक गुण, संस्कृत से निकटता, देवनागरी लिपि इत्यादि की वजह से एक संपन्न भाषा है। ये सभी गुण इसे कृत्रिम मेधा प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में सिद्ध करते हैं। यह देखा गया है कि बीते वर्षों में हिंदी का भाषायी प्रयोग जनसंचार और व्यवसायपरक प्रशिक्षण के रूप में ज़्यादा हो रहा है। इससे प्रौद्योगिकी की अपेक्षाओं के अनुरूप हिंदी भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप ज़्यादा उभर कर आ रहा है, जिससे हिंदी भाषा का विकास,व्यवहार और शिक्षण-प्रशिक्षण अनिवार्य हो गया है। कंवर्जेंस के बहुलप्रयोग से भी हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। संचार माध्यमों के क्षेत्र में हिंदी भाषा की प्रौद्योगिकी विशेषता संस्थापित हो चुकी है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकसित होने से हिंदी भी समान रूप से विकसित हो रही है।

यह कहा जा सकता है कि हिंदी प्रौद्योगिकी की नित नई भाषाई माँगों को पूरा कर रही है। कहा गया है कि 'सही चिन्तन की भाषा सदा अपनी ही होती है। दूसरों की समृद्धि से समृद्ध भाषा को व्यवहार में लाकर उसे मौलिक तथा स्वतंत्र चिन्तन की भाषा के रूप में कतई प्रयोग नहीं किया जा सकता। उधार की भाषा मौलिक चिन्तन और आविष्कार की स्वतंत्रता पर अंकुश ही

लगाती है और धीरे-धीरे अपना पालतू बना लेती है। फलत: हम घिसी-पिटी लकीरों पर चलते रहते हैं। मनुष्य के विकास एवं समृद्धि में विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है।

आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे देश के गिने-चुने वैज्ञानिकों, विद्वतजनों को ही नोबल पुरस्कार मिल पाया है तो इसके पीछे यह भी एक बड़ा कारण है कि विदेशी भाषा के अध्यापन से हमारी सोच में नयापन नहीं रह पाता। अब प्रौद्योगिकी की विशिष्ट तकनीक कृत्रिम मेधा और हिंदी व भारतीय भाषाओं के बीच संबंध स्थापित करना भाषिक प्रगति के लिए आवश्यक है। समय की मांग है कि सरकार, समाज मिलकर पुरातन ग्रंथों, श्रुतियों में निहित ज्ञान-विज्ञान और लोकविद्याओं को संरक्षित करें। यह काम जनभाषा 'हिंदी' में सहजता से किया जा सकता है। कृत्रिम मेधा के द्वारा इस ज्ञान को हिंदी में संजोकर न केवल हम उसे पुनर्स्थापित कर सकते हैं, अपितु बहुउद्देशीय भी बना सकते हैं।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं 'एक राष्ट्र उसी अनुपात में विकास करता है जिस अनुपात में वहाँ की जनता शिक्षित होती है|' स्वामी जी का यह कथन किसी भी देश या समाज के लिए शिक्षा की अहम् भूमिका को सार्थक करता है। भारत सरकार की नई शिक्षा नीति में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ शिक्षा के इन तीनों मूल तत्त्वों को भी महत्व दिया गया है। इसमें भाषा और प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित है। कृत्रिम मेधा का एक सिरा लगातार भाषा के साथ जुड़ा होता है, क्योंकि बिना भाषा के ज्ञान की अभिव्यक्ति की क्षमता प्रभावित होती है। इसमें संसार भर की सूचनाओं को कृत्रिम मस्तिष्क में निवेशित करने और समय पर उसको व्यवहार में लाने के लिए एक भाषा की आवश्यकता होगी। आज समाज के हर वर्ग तथा हर आयु के लोग कृत्रिम मेधा के विभिन्न पक्षों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। यहीं पर हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अंत में, किसान, जवान, सभी की बेहतरी के लिए एआई उपयोगी हो सकता है और जनभाषा इसमें सबसे अधिक सहायक हो सकता है। परंतु इन सभी के बीच सबसे अधिक विचारणीय यह है कि कृत्रिम मेधा के विकास में अधिक से अधिक डिजिटल आँकड़ों की आवश्यकता पड़ेगी, जिसमें भाषाई आंकड़े भी शामिल हैं। कृत्रिम मेधा व ज्ञान के अन्य क्षेत्र में भी हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी सामग्री बहुत सीमित है। कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में भी बेहतर प्रगति के लिए यह ज़रूरी है कि भाषिक सहजता के लिए सभी के लिए उपयुक्त हिंदी को समतुल्य बनाने की दिशा में कार्य हो। इस क्षेत्र में जर्नल्स, पुस्तकें तथा लेखों के साथ ही अखबारों में भी कृत्रिम मेधा के सम्बन्ध में नियमित स्तम्भ देना होगा। आम तौर पर मीडिया

चैनल एवं अख्बारों में प्रौद्योगिकी संबंधी लेखों, सूचनाओं का नितान्त अभाव रहता है। कृत्रिम मेधा की भाषा बनने में हिंदी व भारतीय भाषाओं के समक्ष उपस्थित समस्याओं को दूर करने हेतु सामूहिक प्रयास करना होगा।

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति बढ़ती रहे, इसके लिए देश में आर्थिक, वैज्ञानिक, सामरिक, राजनीतिक और ज्ञान के स्तर पर जितना अधिक सशक्त कार्य होगा, विश्व फलक पर हिंदी का परचम उतनी ही तेज़ी से लहराएगा और इस परचम में समय के साथ कृत्रिम मेधा एवं हिंदी के जुड़ाव से हिंदी शिक्षा, चिकित्सा,सुरक्षा, मौसम, विज्ञान और प्रशासन में और अधिक गतिमान होगी| कृत्रिम मेधा के बारे में स्टीफन हाकिंग ने कहा था 'जिन्न बोतल से बाहर आ चुका है| इनकी टिप्पणी से स्पष्ट है कि कृत्रिम मेधा के भावी अनुप्रयोग में ज्ञान, संस्कार, प्रेम, नैतिकता के विशिष्ट स्थान को समझने की आवश्यकता है। यहाँ भी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कृत्रिम मेधा के साथ भाषा-प्रौद्योगिकी के विकास की बात की गई है और इस आधार पर देश की शिक्षा में गुणात्मक बदलाव की उम्मीद भी है। आइए, कृत्रिम मेधा के इस युग में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के बीच हम इसके प्रति संवेदनशील बनें और खुद को इसकी प्रगति में भागीदार बनाएँ। आशा है, १२वें विश्व हिंदी सम्मेलन से निकले निष्कर्षों से कृत्रिम मेधा और हिंदी के सहज संबंधों द्वारा देश व समाज के सशक्त पथ का निर्माण होगा।

****

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय। एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय॥	कबीरा ते नर अंध है, गुरु को कहते और। हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर॥
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर। कर का मन का डारि दे, मन का मनका फेर॥	माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर। आशा तृष्णा ना मरी, कह गए दास कबीर॥
साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाय॥	रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय। हीरा जनम अमोल है, कौड़ी बदली जाय॥
धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय। माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥	दुःख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय। जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय॥

शोध-पत्र

सांस्कृतिक एवं चारित्रिक पर्यावरण प्रदूषण

- **डॉ. अशोक पण्ड्या**

मुझे लगता है हमने पर्यावरण के स्वरूप निर्धारण में कृपणता बरती है। मेरी दृष्टि में इसे और व्यापक होना चाहिए। मुझे आज हमारी संस्कृति और चरित्र भी प्रदूषण की चपेट में आ गए दिखते हैं। संस्कारों से हम पल्ला नहीं झाड़ सकते अतः हमें सांस्कृतिक एवं चारित्रिक प्रदूषण पर भी चिंता सहित केन्द्रित होना चाहिए।

चिड़िया जैसे छोटे पक्षियों की प्राणरक्षा के लिए नाखून काट कर मिट्टी में गाड़ती, संस्कृति आज गला काट संस्कृति बनती जा रही है तो यह चिंता का विषय तो होगा ही। कोई चिड़िया कटे नाखून को चावल का दाना समझ चुग न ले और उसकी जीवन लीला समाप्त न हो जाए, यह उच्चादर्श विश्व भर में केवल भारत में ही संप्राप्य है। इसीलिए कहने को मन करता है कि 'भारतीय संस्कृति प्राणी मात्र के लिए विश्व को दी गई सबसे बड़ी सौगात है।' तभी वेद कहते हैं-

'धावन् निमिल्यवानैत्रे , न स्खलन्नपतेन्दिह ।'

अर्थात् " आंख बंद कर इस राह दौड़ते चले जाइए, न गिरोगे न ही पतन को प्राप्त होओगे।" यह है भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कार।

उसी तरह कपोत की प्राण रक्षा के लिए अपनी गात देते शिवि की चारित्रिक विश्वपताका भारतीय थाति है। लेकिन आज भाई को भाई से कटते देखने के लिए घर से बाहर भी निकलना नहीं पड़ता। यह सांस्कृतिक और चारित्रिक प्रदूषण नहीं है तो और क्या है ?

इसलिए मित्रो ! भारत को भारत और मनुष्य को मनुष्य बना रहने देने के लिए जागने, उठने और अपने आप को बदलने की आवश्यकता है। प्रकृति की तरह सांस्कृतिक और चारित्रिक पर्यावरण की स्वच्छता और शुद्धिकरण की नैतिक ज़िम्मेदारी भी हमारी ही है।

पाश्चात्य अंधानुकरण फैशन संस्कृति की तो रिश्वत चरित्र की शत्रु बन कर आज भारत को खोखला करने में लगी है तो धनलिप्सा सुरसा- मुख बन गई है। अवैध रावण तो कभी कंस बन जाता है,इधर अनीति ताड़का और शूपर्णखा के रूप में तांडव करती दृष्टिगत होती है तो हम सब खलनायक की भूमिका में नज़र आते हैं। लगता है विश्व नायक राम- कृष्ण की भूमि पर सुपात्र का क्षय हो गया है या कि गांधी के देश में गांधी विलुप्त हो गया है। गांधी का दर्शन, उसकी

धोती, उसकी चप्पल और उसकी लाठी हमने भुला दी हैं। केवल चश्मा ही हमने स्वीकार किया है ताकि नोट पर छपी राशि हमें नज़र आ जाए और उसके संग्रहण में नैतिकता आड़े न आए। वाह भारत,तू क्या से क्या हो गया है ?

क्या हम इतने गिर गए हैं कि सशक्त और अशक्त के बीच भेद भी नहीं कर सकते। वृद्ध, असहाय, बालक या धात्री तक को बस या रेल में जगह तक नहीं दे सकते। क्या हम इतने योगी हो गए हैं कि नंगे नाच में आनंद ढूँढ रहे हैं या फिर इतने सभ्य कि शालीनता का अर्थ तक नहीं समझते? आधुनिकता के नाम पर दो दो हाथों से खाना और स्टेटस के नाम पर झूठन छोड़ना अन्न का सम्मान है या अपमान, मुझे बताएँगे आप ? पिता को 'डेडी' और माता को 'ममी' अर्थात् मरा हुआ तो पहले ही बता चुके हैं। अब और क्या बाकी रह गया है ?? लगता है हम भारत को भारत नहीं समझते और इंडिया के डांडिये ही खनका रहे हैं।

यह कैसा जीवन जी रहे हैं हम,समझ नहीं आता। चुनावी हिंसा,संसद और विधानसभाओं की हाथापाई, चुने जनप्रतिनिधियों की बिकवाली, न्याय में विलंब,अन्याय की दुंदुभी, अधिकारियों की अनदेखी, दफ़्तरी लापरवाही, चिकित्सा के नाम पर शवों को वेंटिलेटर पर रखे रहना, पुलों को गिरते देखना, मनुष्यों को मरते देखना, उपद्रव, विध्वंस, आगजनी जैसे कौन से काम में चारित्रिक प्रदूषण नहीं है , मुझे बताएँगे आप ?

मेरी दृष्टि में तो अनीति,अन्याय और घृणा का पूरा अध्याय ही बदलने की आवश्यकता है,जिसे गंभीरता से नहीं लिया गया तो यह हवाई किला पानी में मिट्टी की तरह ढह जाएगा, जिस पर हम यों ही इतरा रहे हैं अन्यथा प्राकृतिक पर्यावरण शुद्ध कर के भी हम क्या हासिल कर लेंगे ? घूट घूट कर रोज़ मरते रहने की दीर्घायु कौन चाहेगा ?? कम से कम मैं तो नहीं। अतः अपने गिरेबान में झांकने की महती आवश्यकता है तथा अगली पीढ़ी में हरिश्चंद्र, प्रताप, शिवा, लक्ष्मी, गांधी, नेहरू और कलाम की खाद दीजिए अन्यथा भारत को ' महाभारत' अभिनीत करने में देर नहीं लगेगी।

मित्रो, यह उलाहना नहीं है। यह कटाक्ष भी नहीं है। यह यथार्थ का नहीं भोगा जा सकने वाला दंश है। इस ओर से हमें आंख मूंदनी नहीं है,खुली और चौकन्नी रखनी है तो ताज़ा हवा की तरह संरक्षित करनी है। वस्तुत: यही अच्छे कल की चाबी है। धर्मांधता , तुष्टिकरण और आरक्षण भी छलावा ही है। प्रकारांतर से यह राजनीतिक प्रदूषण ही है,इसे स्वच्छ रखना भी हमारी ही ज़िम्मेदारी है तभी चारित्रिक पर्यावरण शुद्ध रह पाएगा। विश्व की पांचवीं महाशक्ति इन घरेलू आडंबरों में उलझी रहेगी तो वैश्विक नेतृत्व का क्या होगा ? क्या सपने सपने रह जाएँगे??

नहीं, हमें ऐसा नहीं होने देना है।

हमने आज़ादी के पिचहतर वर्ष पूरे कर लिए हैं तो बहुत कुछ अर्जित कर लिया है। सुई से प्रारंभ कर अंतरिक्ष यान तक हमने बना लिए हैं। यह श्रम और ऊर्जा निरर्थक न हो जाए अतः हमें अर्थात् समूचे भारतवर्ष को अपने आप को सुधारना- संवारना पड़ेगा। सरकारों की आवाजाही न गिन कर उपलब्धियों की गिनती पर आना पड़ेगा और अपने घर से नागरिक संहिता को शुद्ध और पवित्र करना होगा तभी क्षितिज क्षितिज रह पाएगा। जन बदलेगा तो जनतंत्र स्वत: बदल जाएगा। मुफ्त या बिना मेहनत के कोई लेगा ही नहीं तो ये देंगे किसे ? इसलिए स्वयं को बदलना है, अगला अपने आप सुधर जाएगा। ईमानदारी के कवच और नैतिकता की धार तले ही राष्ट्रीय चरित्र की चमक सुरक्षित रह सकती है तो एक दूसरे के हंता हो कर नहीं, एक दूसरे के पूरक बन कर ही सांस्कृतिक सौरभ विकसित कर पाएँगे हम। नियति में नियत नहीं,नियत में नियति ढूंढने की ज़रूरत है। अभी भी बहुत ज़्यादा नहीं बिगड़ा है, बस खंगालने मात्र से मैल धुल जाएगा। अतः किसी की प्रतीक्षा किए बिना अपने आप से आरंभ करने की आवश्यकता है। स्वयं से बतियाइए,सही जवाब मिलेगा। चारित्रिक प्रदूषण यों ही दूर होगा।

ज़रा सोचिए- क्या अच्छा हो यदि ' बिना टिकट यात्रा न करें' लिखना ही न पड़े, यहाँ कचरा न डालें, यहाँ पेशाब करना मना है, लिखना ही न पड़े। ' घूस लेना पाप है' का बोर्ड बनाना ही न पड़े,' आज का काम आज' जैसे वाक्यों को दफ्तरों की दिवारों तक जाना ही न पड़े, विजय माल्या या नीरव मोदी को भगोड़ा कहना ही न पड़े। दफ्तर, बैंक, कचहरी, थानों या अन्य सरकारी उपक्रमों में नागरिकों को जाने की ज़रूरत ही न पड़े। दूसरे शब्दों में सबके काम समय पर हो जाएँ तो नागरिकों का समय,श्रम और धन राष्ट्र निर्माण में ही लगेगा तो राष्ट्र समृद्ध ही होगा न। ऐसा हो, तभी जनतंत्र जनतंत्र होगा अन्यथा शासन तो राजाओं, अंग्रेज़ों और मुगलों का भी था , रामराज्य को ही क्यों याद किया जाता है, सोचना चाहिए।

मित्रो, समाचार पत्रों में समाचार कम विज्ञापन अधिक होते हैं और जो समाचार होते हैं, उन्हें पढ़ने- सुनने से आँखें बंद तो कान फट जाते हैं। इसीलिए हमें सोचना पड़ता है कि हम कहाँ जा रहे हैं ? सत्य सातवें पाताल में भी नहीं मिलता तो मुजरिम सात समंदर पार भी हाथ नहीं आता। न्याय- अन्याय की परिभाषा ही बदल गई है और दंड तो अस्तित्व में ही नहीं है। ऐसे में शुचिता, पारदर्शिता और चरित्र किसी लोकर में बंद गहनों की तरह ही हैं जिन्हें कभी पहना ही नहीं जा सकता।

- उमा पेलेस, खोडन जिला

बांसवाड़ा राजस्थान

यूँ ही नहीं हो गई हिंदी वैश्विक भाषा

- डॉ. अशोक पण्ड्या

विश्व के एक सौ छिहत्तर विश्व विद्यालयों में यदि कोई भाषा सदाशयता के साथ पढ़ाई जाती है तो उसे वैश्विक भाषा नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे ? निश्चय ही यही कहेंगे, और सौभाग्य से हमारी हिन्दी को यह स्थान और सम्मान मिला है तो हम भारतीय गौरव का अनुभव तो करेंगे ही। आइए, हिंदी की इस गौरव गाथा को कुछ इस तरह देखें। समय कभी पीछे नहीं जाता लेकिन उद्भव,परिवर्तन, विकास को संज्ञा अवश्य प्रदान करता है, जिसे हम सामान्यतः इतिहास कहते आए हैं। हिंदी ने भी एक इतिहास रचा है और आज हज़ार वर्ष की होते-होते एक वैश्विक भाषा का दर्जा प्राप्त कर रही है। 10 जनवरी विश्व हिंदी दिवस इसी का परिचायक पारितोषिक है। प्रारंभ और पहुँच दोनों के बीच बड़ा अंतराल होता है। इसे हम परिवर्तन, प्रयास, उपलब्धि, प्रतिष्ठा या इतिहास भी कहते आए हैं।आइए हिंदी के वैश्विक भाषा बनने तक का हज़ार वर्षीय सफर कुछ इस तरह देखने का प्रयास करें।

दसवीं शताब्दी में प्राकृत के बाद अपभ्रंश से जन्मी हिंदी कई पड़ावों के बाद आज अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर अपना बिगुल बजा रही है तो यह उसका विजय नाद ही कहा जाएगा लेकिन कहते हैं न कि सफलता के रास्ते संकरे,पथरिले और कंटीले ही होते हैं। हिंदी भी इन संकरी गलियों से गुजरी है कहूं तो अन्यथा न लें। अतः थोड़ा पीछे तो देखना ही पड़ेगा। हिंदी का बाल्यकाल अपभ्रंश अभिसंज्ञित है। अरबी, फारसी, तुर्की और उर्दू के शब्दों ने सर्वप्रथम इस पर वार किया तथापि प्राकृत हिंदी ने इन्हें पुत्र, सहोदर और भगिनी जैसा दुलार दिया और जीजी बन गई।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि स्थानीय बोलियों को भी हिंदी ने अपने में पचा लेने का सदोपक्रम किया तो संस्कृत रूप भी स्वीकार कर लेने में हिचकिचाहट नहीं की तो यह कुनबा बड़ा हो गया और एक दूसरे का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ने लगा। यह हिंदी का धैर्य और सहनशीलता का ही द्योतक है। इतिहास ने इसे हिंदी का आदिकाल या पूर्वादिकाल नाम दिया। हम्मीर रासो को इसके प्रतीक के रूप में जाना जाने लगा। इसकी कालावधि सन् 1050 से 1375 मानी गई। तदंतर अमीर खुसरो के प्रतिनिधित्व में उत्तर आदिकाल की संज्ञा मिली। यह निरंतरता तुलसीदास के कृतित्व के साथ भक्ति काल के रूप में उभर कर सामने आई तो इसका वेग सरिता सा तेज आद्यांत प्रभावी रहा। यहाँ से हिंदी ने अंगड़ाई ली और रीतिकाल संबोधन पा कर बिहारी की छाया में रही (1620)। तदंतर भारतेन्दु युग आया और हिंदी के नए आयाम स्थापित हुए।(1883)। और उन्नीसवीं सदी में तो हिंदी का विस्तार इतना तेज हो गया कि हिंदी सरिता

से सागर होती चली गई। अब हम आधुनिक काल में पहुँच गए जहाँ साहित्य की सुरसरी बह चली तो भाषा की हर घर पहुँच हो गई और आज तो अंग्रेज़ी को अपने उदरस्थ कर अकूत शब्द भंडारण कर हिंदी विश्व विजयिनी का डंका बजा रही है। फौरे तौर पर हिंदी की इस हज़ार वर्षीय यात्रा को हमने देखा तो लगा हिंदी जितना भी चली, पांव गड़ा कर चली तो परिणाम तो आना ही था, आया। आज हिंदी एक वैश्विक भाषा के रूप में उभर कर दुनिया के सामने आई और विश्व पटल पर सुर्खियाँ बटोर रही है। आज हिंदी का अपना क्षितिज है, जिस पर हमें गर्व है।

आज स्थिति यह है कि विश्व के 176 विश्वविद्यालयों में यदि कोई भाषा सदाशयता के साथ पढ़ाई जाती है तो वह हिंदी है। क्या इसे वैश्विक भाषा नहीं कहा जाना चाहिए ? क्या यह कम आश्चर्य है कि विश्व भर में प्राय: एक सौ अस्सी विश्व विद्यालयों में हिंदी संकाय एवं विकल्प के रूप में विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए उपलब्ध है। अकेले अमेरिका में ही हिंदी संकायी विश्व विद्यालयों की संख्या चार दर्ज़न से अधिक की है तो यूरोप भी पीछे नहीं रह गया है। यहाँ भी कई विश्वविद्यालय हिंदी पढ़ा रहे हैं। चीन भी पिछले पांच वर्षों से उच्च शिक्षा में हिंदी को अभिस्थापित कर रहा है। समर्थ और समृद्ध राष्ट्रों में हिंदी की यह स्थिति नि:संदेह वैश्विक हिंदी के वजूद को व्यक्त करती है। वस्तुत: हिंदी की विश्वव्यापी यह स्वीकार्यता हिंदी के पसरते पांव और उसकी मौलिकता के साथ उसके वैश्विक महत्त्व को भी रेखांकित करती है।

भूमंडलीकरण आज का ध्रुव सत्य है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता और वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी की महत्ता और भूमिका की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, युगांडा, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, टोबैगो, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका,कतर, कुवैत, अन्य खाड़ी देशों में भी हिंदी के पांव मज़बूत हैं। न्यूज़ीलैंड,न्युयार्क, आस्ट्रेलिया, जापान, इंग्लैंड कहीं भी जाएँ, हिंदी मिल ही जाएगी। यह सब इसलिए कि, हिंदी में युवाओं को भविष्य दिखने लगा है तो दुनिया हिंदी का लोहा मानने लगी है। तेज़ी से उभरता विश्व बाज़ार और अध्ययन क्षेत्र हिंदी के बिना अधूरा प्रतीत होने लगा है। हिंदी में भविष्य का विश्वास झलकता है और तकनीकी स्तर पर भी हिंदी मज़बूती से अपने पांव जमाती जा रही है। जल हो या अंतरिक्ष, स्वास्थ्य हो या औषधि, गणना हो या भूगोल, वाणिज्य हो या व्यापार,कला हो या कौशल विश्व भर में हिंदी की ओर आशा भरी नज़रों से देखा जाने लगा है। यही नहीं, हिंदी इन पर खरी उतरती नज़र आ रही है।

हिंदी बोलने- समझने वालों की संख्या आज विश्व में सौ करोड़ होने को है। यह ज्ञातव्य है कि 30 से 80 करोड़ होने में हिंदी भाषियों को अप्रत्याशित बहुत कम समय लगा तो दुनिया विस्मित

रह गई और हिंदी की ओर अनायास आकृष्ट हो गई। यहाँ तक कि अब पूरी दुनिया हिंदी को ही अपना व्यापार मित्र मानने लगी है। हाल ही में मिली संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी की मान्यता ने भी हिंदी का नया अध्याय लिखा है। नि:संदेह यह हिंदी की विश्व पताका ही है। अंग्रेज़ी और चीनी के बाद तीसरी-चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में भी हिंदी ने अपने सिंहासन सजाए हैं।

सारत: विश्व की किसी भी भाषा की तुलना में हिंदी ने बहुत ही कम समय में अपने आप को उच्चस्थ स्थापित किया है तो शिखर का हक भी जताया है। मित्रो,ज़रा इधर भी देखिए - इंटरनेट की ओर जहाँ हिंदी ने अप्रत्याशित क्षितिज छुआ है। देखिए तो, सन् 2002 तक इंटरनेट के मामले में हिन्दी शून्य पर थी तो 2003 से इस में बाढ़ आ गई और 50 हज़ार से भी अधिक ब्लॉग हिंदी की अंगड़ाई के रूप में आंके गए और आज सोशल नेटवर्किंग साइट पर आधे से अधिक अर्थात् साठ प्रतिशत से अधिक लोग हिंदी में बतियाते दिखाई पड़ते हैं। सन् 2009 में गूगल सर्च और 2011 में वेब एड्रेस के ज़रिए ज़बरदस्त अंगड़ाई ली और दुनिया को हिला कर रख दिया।

वस्तुत: भूमंडलीकरण इसी भूकंप का लावा है, कहना सानुकूल होगा। इस उठा पटक में एक और कीर्तिमान हिंदी के हक में देख दुनिया की आँखें फटी की फटी रह गईं और वह है - पिछले बीस पच्चीस वर्षों में हिंदी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपने में समाते हुए डेढ़ लाख शब्दों का भंडारण भी कर लिया और अपने शब्द सामर्थ्य में अप्रतिम वृद्धि अर्जित की। इनमें सर्वाधिक शब्द अंग्रेज़ी के हैं, जिन्हें हिंदी ने अपने अंक में समा लिया। व्याकरण के रूप को भी थोड़ा बदल लिया कहूं तो दुस्साहस न समझें निवेदन करता हूँ। वस्तुत: यह हिंदी का स्वर्ण काल है जिसे हम इक्कीसवीं सदी के आगाज़ के साथ हिंदी के माथे मुकुट पहना रहे हैं। आलम यह है कि आज दुनिया को हिंदी की इतनी आवश्यकता है जितनी स्वस्थ शरीर को भोजन की होती है। 10 जनवरी विश्व हिंदी दिवस यही कुछ तो कहता है और हिंदी की दुंदुभी बजाता है।

आज विश्व भर में विश्व हिंदी सम्मेलनों और अधिवेशनों की बहार आ गई है। कोई संस्थान बारहवां विश्व सम्मेलन कर रहा है तो कोई नौवाँ अधिवेशन। हिंदी, हिंदी और हिंदी की ही डफ बजती नज़र आ रही है। अब हिंदी न केवल साहित्य ही है, न मात्र भाषा। हिंदी आज विश्व भर की उपार्जन व्यवस्था का हिस्सा बनती जा रही है। हिंदी के बिना व्यापार न मुंह खोलता है न ग्राहक। हिंदी अर्थ तंत्र की छुपी हुई शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। यह यथार्थ है। यह अपरिहार्य सत्यान्वेषण है कि अंग्रेज़ी ने हिंदी को तार तार करने की पुरजोर कोशिश की। काफ़ी हद तक सफल भी हुई लेकिन आज हिंदी अंग्रेज़ी का ताज छीनने लगी है।

एक समय था जब साहित्य साहित्य नहीं माना जाता था जब तक वह अंग्रेज़ी के अनुवाद का चोला पहन कर नहीं आता था। यद्यपि यह आज भी है तथापि थोड़ा बहुत परिवर्तन तो अवश्य आया है। बुकर सम्मान इसका ज्वलंत उदाहरण है। यही नहीं आज विश्व में मातृभाषा हिंदी लिखवाने वालों की संख्या 36 करोड़ है तो अंग्रेज़ी लिखवाने वालों की संख्या 35 करोड़ है। ऐसा ही एक 35-36 का रोचक और ज्ञानवर्धक उदाहरण देखिए- हिंदी के तुलसीदास जी ने अपने साहित्य में 36 हज़ार शब्द संजोए हैं तो शेक्सपीयर महोदय ने अंग्रेज़ी साहित्य के 35 हज़ार शब्द परोसे हैं। इस तरह जहाँ तक समृद्धि का सवाल है, हिंदी अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध प्रमाणित हुई है। पीछे मुड़कर देखते हैं तो हिंदी का आकाश नक्षत्रों से भरा पड़ा है , जिनमें तुलसी, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, देवकीनंदन खत्री, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, भीष्म साहनी, मृदुला गर्ग आज भी चमक रहे हैं तो प्रवासी हिंदी साहित्य भी गरज रहा है और निर्मला वर्मा (प्राग),ऊषा वर्मा (याक/ लंदन), कृष्ण कांत देव वैद,विक्रम चौहान और दिव्या माथुर हिंदी परोस रहे हैं। अतः हिंदी की लौ तो जल रही थी,जल रही है और जलती रहेगी , तो मानना पड़ेगा कि हिंदी विश्व व्यापिनी है।

इस चकाचौंध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिंदी ने भारत की सीमाएँ लांघीं तो ज्ञानार्जन और परिस्थितियों के अलावा संस्कृति का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। वस्तुत: हिंदी की विश्व यात्रा का शुभारंभ रामलीला के साथ हुआ और विदेशी धरती पर हिंदी ने अपना पहला पांव इसी के साथ पहली बार रखा। दूसरे शब्दों में यह राम कथा की ही विदेश यात्रा है जो राम नाम के साथ हिंदी को भी अपने साथ ले गई और हिंदी को हिंदी होने का गौरव प्रदान किया। दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्राय: सभी देशों में किसी न किसी रूप में रामलीला होती है। इसी रामचरित के मंचन के साथ हिंदी भी इन देशों में पहुँच गई तो वहीं की होकर रह गई। थाई लैंड, श्रीलंका और जापान रामकथा के आद्यांत गवाह हैं। कंबोडिया में रामायण सबसे प्रसिद्ध साहित्य है जो हिंदी का संवाहक संरक्षक नहीं तो और क्या है! थाई लैंड में राम गाथा है राष्ट्रीय महाकाव्य तो लाओस में थिएटर में राम कथा मंचित होती रही है।इंडोनेशिया की संस्कृति ही रामायण प्रेरित है। मॉरीशस में रामलीला ढोलक की थाप पर थिरकती है तो विश्व का सबसे बड़ा हिंदू मंदिर कंबोडिया में ही है। इस तरह हिंदी की विदेश यात्रा नई नहीं है। आज तो विश्व के हर कोने में हिंदी की मशाल जलती नज़र आती है,चाहे वह शिक्षण अध्ययन हो,अध्यापन हो, तकनीक हो या अंतरिक्ष हिंदी की उपस्थिति सर्वत्र है।

अतः कहना पड़ेगा कि हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति और संपर्क के हर रूप में विश्व विहारिणी है और एक विलक्षण भाषा के रूप में स्थापित हो रही है।

- उमा पेलेस, खोडन

हिंदी साहित्य में सोशल मीडिया और उनकी स्थिति :-

- अमित कुमार गुप्ता

प्रस्तावना:-

'जनसंचार' का अर्थ है – "एक छोटे अथवा समूह से भाव और कान दूसरे में जब किसी भाव या विचार की जानकारी को पहुँचाते हैं और यह प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर होती है तो इसे जनसंचार कहते है।"[1] 'जनसंचार' का उद्देश्य जानकारी या विचारों को समाज के उन तमाम लोगों तक पहुँचाता है जो इनसे सम्बद्ध हैं या जिन्हें यह जानकारी पहुँचाना अपेक्षित है ताकि वे लोग इससे अवगत हो जाये या उसका लाभ उठा सकें। वैसे तो संचार चित्रलिपियों, स्मरणमूलक ज्ञान, आवाज़, शब्द एवम् भाषा आदि के माध्यम से भी हो सकता है किंतु भाषा इसका सबसे अधिक प्रभावी माध्यम है। अन्य माध्यम भले ही विचारों के सफल वाहक सिद्ध न हो किंतु भाषा संचार का एक ऐसा माध्यम है जो कभी अपने उद्देश्य में असफल नहीं होती। जनसंचार में वही भाषा प्रभावी होती है जिसको समझने वालों की संख्या बड़ी हो।

जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है वह भारत में जनसंचार के लिए सर्वोत्तम साधन है। कारण हिंदी समझने और बोलने वालों की संख्या पूरे देश में अत्यधिक है। जिस राज्य की भाषा हिंदी के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा है, वहाँ भी हिंदी के लोग भली प्रकार समझते हैं, भले ही उसे वह बोल ना पाते हों। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है हिंदी फिल्में और उनके गीत। शायद ही ऐसा कोई अहिंदी भाषी प्रदेश होगा जहाँ हिंदी फिल्में न देखी जाती हों या वहाँ के बच्चों से बूढ़ों तक हिंदी गीतों को गुनगुनाते न मिल जाएँ।

जनसंचार के कई माध्यम हैं। जिनमें समाचार-पत्र, रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन व विभिन्न टी.वी. चैनल हैं। इनमें कुछ अंग्रेज़ी एवं अन्य भाषाओं पर आधारित हैं। जबकि आधे से अधिक माध्यमों की संचार-भाषा हमारे यहाँ हिंदी है। हिंदी माध्यम को अपनाने वाले जनसंचार के विभिन्न साधन आज न केवल बहुत लोकप्रिय हैं, अपितु उनके पाठक अथवा दर्शकों की संख्या भी बहुत विशाल है। उदाहरण के लिए पत्र-पत्रिकाओं को ले लीजिए। हिंदी पत्रकारिता ने पाठक वर्ग का एक विशाल समूह तैयार किया है। मीडिया के दो प्रकार हैं -

1. मुद्रण मीडिया

2. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

सोशल मीडिया का प्रयोग हिंदी में अलग -अलग तरह से होता है। जनवरी 2021 के अनुसार जहाँ यूट्यूब यूज़र्स दुनिया मे 2.29 बिलियन रहे हैं। वहीं भारत में इसके 225 मिलियन यूज़र्स

रहे हैं जो कि देश की कुल जनसंख्या का 16% रहा है। जिसमें से अधिकांश वीडियो हिन्दी भाषा में ही बनाए व देखे गए हैं। इस प्रकार सोशल मीडिया के बढ़ते प्रयोग का कारण हिन्दी भाषा ही है कि आज हमारे देश में ज़्यादातर लोग सहज व सरल रूप से सोशल मीडिया का प्रयोग कर अपने भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग ने न केवल हमें पहले की तुलना में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से जागरूक किया है, अपितु हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सोशल मीडिया अपने मूल स्वभाव में जनतांत्रिक दिखता है तथा देश की अधिकांश जनता हिंदी भाषा का ही प्रयोग करती है जिसके परिणामतः सोशल मीडिया का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों की संख्या में भी काफ़ी इजाफा हुआ है।

सोशल मीडिया लोगों की तरह-तरह के रचनात्मक प्रयोगों का साथी बन रहा है। नए लेखक नए साहित्य गढ़ रहे हैं ट्विटर हो या इसी तरह के दूसरे माध्यम मिनटों में किसी को आसमान पर बिठाने की कूबत रखते हैं और धराशाई करने की भी। मुद्रण मशीन आने के बाद भाषाओं का व्यवहार विस्तृत रूप से होने लगा । हिंदी के व्यवहार को मुद्रण का माध्यम थोड़ी देर से प्राप्त होना शुरू हुआ। 30 मई 1826 को देश का पहला हिंदी समाचार पत्र (साप्ताहिक) पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने कलकत्ता में शुरू किया और इसके साथ ही हिंदी भाषा के विस्तार ने गति पकड़ना प्रारम्भ कर दिया। बाद में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आने के बाद उनका विस्तार अधिक हो गया। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में इंटरनेट ने देश में प्रवेश किया।

इंटरनेट पर हिंदी भाषा के उपयोग से दुनिया भर में हिंदी का विस्तार पल भर में होने लगा। देश के किसी भी कोने से ब्लॉग, व्हॉट्सएप या फेसबुक पर हिंदी में बोली-लिखी गई बात एक पल में विश्व में फैल जाती है। दुनिया के किसी भी देश के किसी भी कोने से उस बात तक इंटरनेट के द्वारा पहुँचा जा सकता है। एक समय था जब कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता और अब एक समय ऐसा आ गया है कि जब गर्व से कह सकते हैं कि हिंदी का सूर्य कभी अस्त नहीं होता है। इस तरह का कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। हिंदी ने अपनी उपयोगिता और अपनी स्वयं की ऊर्जा से वह स्थान प्राप्त किया है जिसे पाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य ने ताकत, क्रूरता, हिंसा, दमन इत्यादि का प्रयोग किया गया। विश्व के 150 से ज़्यादा देशों में भारतीय मूल के लोग निवास करते हैं। उनमें से एक बड़ी संख्या इस तरह की है जो मातृभाषा या दूसरी भाषा के रूप में हिंदी जानते हैं। इन सब अलग-अलग भाषा-भाषी प्रवासी भारतीयों में से अधिकतर आपस में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग करते हैं। कई ऐसे

भी लोग हैं जो हिंदी में साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन करते हैं या ऐसी गतिविधियों में शामिल होते हैं।

विकसित देशों में हिंदी को लेकर सोशल मीडिया में ललक, तल्लीनता बढ़ रही है। इसकी वजह यह है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुँचना होगा और इसके लिए जनभाषा ही ,सोशल मीडिया ही सशक्त माध्यम है । इसी कारण से हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहा है। इक्कसवीं सदी के उतरार्द्ध में टी.वी. ने हिंदी भाषा और साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सूचना क्रांति के इस युग में अलग-अलग भाषा-भाषियों के बीच में अपने तकनीकी उत्पाद, जैसे कि कम्प्यूटर ,मोबाइल ,पेजर इत्यादि बेचने के लिए हिंदी बाज़ार की ज़रूरत बन गई है। प्रायः सभी कम्पनियाँ अपने फोन को अंग्रेज़ी के साथ हिंदी भाषा में उपलब्ध करा रही है। चीनी कम्पनियाँ तो पहले से ही हर छोटे-बड़े फोन को हिंदी में भी उपलब्ध करा रही है। हमारे गाँवों में जिस किसी के पास भी मल्टीमीडिया फोन होता है, इसका उपयोग हिंदी में करना सरल माना जाता है। स्मार्टफोन के लिए कई प्रकार के एप्लिकेशंस भी डेवलप किए गए हैं। इनमें से चाहे ज़्यादातर अंग्रेज़ी में हों, किन्तु भारत में लोग अभी भी हिंदी भाषा के एप्लिकेशंस का प्रयोग करते हैं। इसी कारण एप में अलग से हिंदी भाषा को भी दिया जाता है। फेसबुक और गूगल जैसी वेबसाइट्स भी भारत और विश्वभर के यूजर्स को हिंदी में जानकारी उपलब्ध करा रही है।

ऐसा भी समाचार है कि बहुत जल्द ही गूगल ई-मेल जैसी अपनी महत्वपूर्ण सर्विस को पूर्णरूप से हिंदी में भी उपलब्ध कराने वाली है । उदाहरण के लिए अभी तक आपका ई-मेल पता अंग्रेज़ी भाषा में होता था, किन्तु कुछ ही दिनों पश्चात् हम हमारा ई-मेल हिंदी में बना पाएँगे। आज के समय में हिंदी के 15 से भी ज़्यादा सर्च इंजन है जो किसी भी वेबसाइट का थोड़ी ही मिनटों में हिंदी अनुवाद करके पाठकों के सामने रखा जाता है।

चीन के प्रसिद्ध लेखक अलाइ की दो प्रसिद्ध पुस्तकों का 'रेड पोपिप्पज' और ' होलो माउंटेन' हिंदी भाषा में पिछले वर्ष दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में विमोचन किया गया । चीनी भाषा में मूल रूप से लिखी गई इन पुस्तकों का हिंदी अनुवाद भारतीय पत्रकार आनंद स्वरूप वर्मा ने किया है। यह हिंदी का आकर्षण, हिंदी की उपयोगिता और हिंदी के बाज़ार का ही प्रभाव है कि बहुत ही विदेशी लेखकों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद सतत किया जा रहा है।

अफगानिस्तान, इंग्लैंड, अरब, अर्जेंटीना, अमरीका, आर्मेनिया, ऑस्ट्रिया, इराक, इटली, एस्टोनियाएस्टोनिया, क्यूबा, कांगों, कज़ाकिस्तान, गुयाना, चिली, चीन, जर्मनी, तिब्बत,

जापान, तुर्की, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, नॉर्वे, पुर्तगाल, वियतनाम, सिंगापुर, लीबिया इत्यादि कई देशों में कई कवियों की कविताओं का हिंदी अनुवाद हुआ है। यह भी सोशल मीडिया का ही उपकार है। आजकल जब लगभग हर चीज़ को सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति से नापा जा रहा है। हर संस्था, व्यक्ति, सरकार, कंपनी, साहित्यकर्मी से समाजकर्मी तक और नेता से अभिनेता तक को सोशल मीडिया में उसके वज़न, प्रभाव और लोकप्रियता की कसौटी पर तौला जा रहा है। यह स्वाभाविक है कि इस नई तकनीकी-सामाजिक शक्ति और भाषा के संबंध को भी हम समझने की कोशिश करें।

यह सोशल मीडिया भी अंतत: एक तकनीकी चीज़ है। हर तकनीकी आविष्कार निरपेक्ष होता है। यानी हर तरह के काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। इसलिए हर तकनीकी आविष्कार की तरह इसके दुरुपयोग पर हमें ज़्यादा आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हर वैज्ञानिक या तकनीकी आविष्कार, यदि वह एक व्यापक समाज के लिए रोचक या उपयोगी है, अपनी एक नई जगह बना लेता है। और जब यह नई तकनीक संवाद और संप्रेषण से जुड़ी हो तो स्वाभाविक है कि वह अपनी विशिष्टताओं के साथ संवाद और संप्रेषण के नए-पुराने तरीकों, उपकरणों और तकनीकों को कुछ विस्थापित करके ही अपना स्थान बनाती है।

सोशल मीडिया का असर बस नकारात्मक ही नहीं है। ट्विटर जैसे मंचों की शब्द-सीमा ने अपनी बात को चुस्त और कम से कम शब्दों में कहने के अभ्यास को संभव बनाया है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक अभिव्यक्ति और एक बड़े समुदाय तक निडर और बिना रोक-टोक और नियंत्रण के अपनी बात, अपनी सोच और अनुभव पहुँचाना संभव बनाकर करोड़ों लोगों को एक नई ताकत, छोटी बड़ी बहसों में भागीदारी का नया स्वाद और हिम्मत दी है। इस नई ताकत ने सरकारों और शासकों को ज़्यादा पारदर्शी, संवादमुखी और जवाबदेह बनाया है, जनता के मन और नब्ज़ को जानने का नया माध्यम दिया है। सोशल मीडिया की ताकत ने सरकारों को अपने फैसलों, नीतियों और व्यवहारों को बदलने पर भी मजबूर किया है। पर क्या इस मीडिया ने लोक-विमर्श को ज़्यादा गंभीर, गहरा, व्यापक, उदार बनाया है? क्या जब करोड़ों लोग एक साथ इतना लिख- बोल रहे हैं तो इन मंचों पर सार्वजनिक विमर्श की गुणवत्ता बढ़ी है, स्तर बेहतर हुआ है? इस पर दो टूक राय देना संभव नहीं, क्योंकि संसार में कुछ भी एकांगी, एकदिशात्मक नहीं होता।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सोशल मीडिया में हिन्दी भाषा का प्रयोग अस्वाभाविक रूप से बढ़ा है। सोशल मीडिया ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा को विस्तार तो दिया ही है

किन्तु इसके स्वरूप को भी परिवर्तित किया है लेकिन इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि जब कोई भाषा विभिन्न बोली बोले जाने वाले व्यक्तियों व क्षेत्रों से होकर गुज़रेगी तो इसके स्वरूप में परिवर्तन होगा ही,किंतु आज तकनीकी दृष्टि से सभी चुनौतियों से निपटने के बाद जब हिंदी भाषा सभी प्लेटफार्म में उपयोग हेतु उपलब्ध है तो इसके स्वरूप व शुद्धता पर गहन विचार ना करते हुए इसे जनसामान्य हेतु अभिव्यक्ति का सरल व सहज माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। वैसे भी सदियों बाद तो सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों में जनसंचार व जागरूकता का भाव विकसित हो सका है। इस पर किसी भाषा की शुद्धता की कसौटी का विचार करके इस जनचेतना को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। हिंदी के संदर्भ में लोकमान्य तिलक ने कहा था –'सरलता और शीघ्रता से सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिंदी सर्वोपरि है।'[2] इस प्रकार सोशल मीडिया में हिंदी की स्थिति मज़बूत होती जा रही है।

- **शोध छात्र,**

गुजरात

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. मीडिया साहित्य और संस्कृति .डॉ .सुजाता वर्मा .पृ.24
2. वही .पृ-30

****

जब टीवी मेरे घर आया तो मैं किताबें पढ़ना भूल गया था। जब कार मेरे दरवाज़े पर आई तो मैं चलना भूल गया। हाथ में मोबाइल आते ही मैं चिट्ठी लिखना भूल गया। जब मेरे घर में कंप्यूटर आया तो मैं स्पेलिंग भूल गया। जब मेरे घर में एसी आया तो मैंने ठंडी हवा के लिए पेड़ के नीचे जाना बंद कर दिया। जब मैं शहर में रहा	तो मैं मिट्टी की गंध को भूल गया। मैं बैंकों और कार्डों का लेन-देन करके पैसे की कीमत भूल गया। परफ्यूम की महक से मैं ताज़े फूलों की महक भूल गया। फास्ट फूड के आने से मेरे घर की महिलाएँ पारंपरिक व्यंजन बनाना भूल गई। हमेशा इधर-उधर भागता मैं भूल गया कि कैसे रुकना है और अंत में जब मुझे सोशल मीडिया मिला तो मैं बात करना भूल गया..

जन-संचार पत्रकारिता

- करिश्मा देवी रामझीतन नारायण

प्रस्तावना :

मनुष्य के जीवन में समाज अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। समाज के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज और मनुष्य एक दूसरे के पूरक हैं। समय समय पर समाज में विभिन्न घटनाएँ घटती रहती हैं। परिवर्तित होते समाज की गतिविधियों की जानकारी समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाने का कार्य पत्रकारिता के माध्यम से होता है। केवल समाचार इकट्ठा करना पत्रकारिता का काम नहीं है। बल्कि पत्रकारिता के द्वारा मनुष्य समाज और सामयिक चेतना से सम्पूर्ण रूप से जुड़ा रहता है। समाज से उसकी कुरूपता का विनाश कर समता के धरातल पर उसका नवनिर्माण करना पत्रकारिता की मूल भावना है। जन-संचार पत्रकारिता को यदि 'सूचनाओं का भंडार' (Storyhouse of information) कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह सूचनाओं का ऐसा भंडार है जिसमें घटानाएँ एवं विचार सन्निहित रहते हैं।

जन-संचार में 'संचार' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के Communication का पर्यायवाची है। Latin (लेटिन) भाषा के 'Communis' से लिया गया है – अर्थ: to make, share, impart अर्थात सामान्यीकरण, भागीदारी, मुक्त, सूचना व सम्प्रेषण। ओटो एन लारसन के अनुसार :

जन-संचार बिखरे हुए जनों को उन प्रतिकों का प्रेषण है जो अवैयक्तिक साधनों से अज्ञात गंतव्य को भेजे जाते हैं।

जांडेन के अनुसार:

संगठित स्रोत द्वारा विस्तृत, विजातीय, बिखरी हुई जनता को तकनीकी माध्यम से जो संदेश प्राप्त होता है, उसे जनसंचार कहते हैं।

अगर इन परिभाषाओं का निचोड़ लगाया जाए तो इसका यही अर्थ निकलेगा कि आज पत्रकारिता में सूचना के महत्त्व के चलते ही 'जन-संचार' सूचना और प्रौद्योगिकी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गया है।

जन-संचार पत्रकारिता विविधात्मक होती है। सभी वर्गों के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति इसमें होती है। जन-संचार पत्रकारिता मनुष्य के विचारों, मूल्यों और आदर्शों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज का प्रत्येक वर्ग, चाहे वह गरीब हो या अमीर, मज़दूर हो या पूँजीपति, किसान हो या ज़मींदार, छात्र हो या अध्यापक, शासक हो या प्रजा, सभी के विचारों, गतिविधियों को जनसामान्य तक पहुँचाने में जन-संचार पत्रकारिता सहायक होती है।

जन-संचार पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य :

- सूचनाओं का संग्रह तथा प्रसार,
- व्यक्ति का बहुआयामी विकास,
- सामाजिक ज्ञान एवं मूल्यों का प्रेषण ,
- मनोरंजन,
- राष्ट्रीय एकता और अखंडता की दृढ़ता,
- प्रेरणा और प्रोत्साहन तथा
- सांस्कृतिक उन्नयन।

जन-संचार पत्रकारिता का वर्गीकरण निम्न माध्यमों द्वारा किया जा सकता है :

प्रिंट माध्यम : समाचार पत्र-पत्रिकाएँ

विभिन्न जन-संचार माध्यमों में प्रिंट माध्यम आधुनिक जन-संचार माध्यमों की अपेक्षा सबसे प्राचीन है। मुद्रित होने के कारण इसकी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता अधिक है। स्वशासी संस्थाओं या व्यक्तियों के हाथों में होने के कारण लोगों का इस माध्यम पर अधिक विश्वास है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि आज भी नियमित रूप से समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों, इश्तहारों, पर्चों आदि का प्रकाशन-उद्योग फल-फूल रहा है। जन-संचार की सबसे मज़बूत कड़ी पत्र-पत्रिकाएँ या प्रिंट मीडिया ही है। हालाँकि अपने विशाल दर्शक वर्ग और तीव्रता के कारण रेडियो और टीवी की ताकत ज़्यादा मानी जा सकती है लेकिन वाणी को शब्दों के रूप में रिकॉर्ड करने वाला आरंभिक माध्यम होने की वजह से प्रिंट मीडिया का महत्त्व हमेशा बना रहेगा। दुनिया में अखबारी पत्रकारिता को अस्तित्व में आए 400 साल हो गए हैं। भारत में इसकी शुरुआत सन् १७८० में हुई।

मॉरीशस में हिन्दी पत्रकारिता : मॉरीशस ही वह सर्वप्रथम भारतेतर देश है जहाँ पर विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ था तथा नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के अंतर्गत राष्ट्र

संघ में हिन्दी को स्थान देने का प्रस्ताव भी सबसे पहले मॉरीशस ने ही रखा था। हिंदी पत्रकारिता की दृष्टि से मॉरीशस में प्रतिष्ठित व प्राथमिक १५ मार्च १९०९ को ***"हिंदुस्तानी"*** साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्र का प्रकाशन एक ही साथ, तीन भाषाओं में होता था, हिंदी, अंग्रेज़ी तथा गुजराती। इसका श्रेय भारत से आए मणिलाल डॉक्टर को जाता है। इसी के बाद लोगों में ***निज भाषा उन्नति अहै, निज उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को सूल*** की भावना जागृत होने लगी। डॉ. मणिलाल ने जब मॉरीशस में आकर आर्य सभा की स्थापना की तभी से सन् १९११ में *"मॉरीशस आर्य पत्रिका"* का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें आर्य समाज की शिक्षा के साथ-साथ, वैदिक धर्म का भी प्रचार होता था। इसके बाद, उसी वर्ष में *"ओरिंटल गजेट"* के नाम पर श्री रामलाल के संपादन में एक अन्य पत्रिका प्रकाशित हुआ। इंडोमॉरीशस संघ के तत्त्वावधान में सन् १९२० में *"मॉरीशस टाइम्स"* का प्रकाशन हुआ। सन् १९२४ में श्री गजाधर राजकुमार के संपादन में *"मॉरीशसमित्र"* नाम का एक पत्र निकला। इसमें अत्यधिक सामाजिक सुधार एवं भ्रातृत्व भावना के लेख छपते थे। आगे चलकर, सन् १९२९ में पं. काशीनाथ किस्तो के संपादन में *"आर्य वीर"* नाम का एक द्विभाषिक पत्र भी निकला। इस प्रकार सन् १९३३ में *"सनातन धर्मांक"*, सन् १९३६ में इंडियन कल्चरल एशोशिएशन द्वारा *"इंडियन कल्चरल रिव्यू"*, *"वसंत"*, सन् १९४२ में पब्लिक रिलेशंस ऑफिस से *"मासिक चिट्ठी"*, सन् १९४५ में प्रो. विष्णुदयाल वासुदेव के संपादन में *"आर्यवीर जागृति"*, सन् १९४८ में श्री जयनारायण राय द्वारा संपादित *"जनता"*, जैसे अन्य पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। इस प्रकार मॉरीशस में हिंदी पत्रों की एक लंबी पृष्ठ शृंखला समय के साथ निरंतर बढ़ती रही है जो विश्व हिंदी साहित्य के लिए एक शुभ लक्षण बनता रहा।

विश्व भर में समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं का इतिहास अन्य संचार माध्यमों से कहीं अधिक पुराना है। आज भी विश्व की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ इन पत्र-पत्रिकाओं के रूप में इतिहास का जीवंत दस्तावेज़ बन चुकी हैं। सुबह-सुबह उठकर चाय की चुस्कियों के साथ समाचार-पत्र का पढ़ना अब भी लोगों की दिनचर्या का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। मॉरीशसीय संदर्भ में *L'Express, Le Matinal, Le Mauricien* आदि दैनिक समाचार-पत्र हैं और *Weekend, Le Defi Plus, News on Sunday* आदि साप्ताहिक समाचार पत्र हैं।

प्रिंट (मुद्रित) माध्यमों की विशेषताएँ:

1. प्रिंट माध्यमों के छपे शब्दों में स्थायित्व होता है।
2. हम उन्हें अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार धीरे-धीरे पढ़ सकते हैं।
3. पढ़ते-पढ़ते कहीं भी रुककर सोच-विचार कर सकते हैं।
4. इन्हें बार-बार पढ़ा जा सकता है।

5. इसे पढ़ने की शुरुआत किसी भी पृष्ठ से की जा सकती है।
6. इन्हें लंबे समय तक सुरक्षित रखकर संदर्भ की भाँति प्रयुक्त किया जा सकता है।
7. यह लिखित भाषा का विस्तार है, जिसमें लिखित भाषा की सभी विशेषताएँ निहित हैं।
8. लिखित और मौखिक भाषा में सबसे बड़ा अंतर यह है कि लिखित भाषा अनुशासन की माँग करती है। बोलने में एक स्वत:स्फूर्तता होती है लेकिन लिखने में भाषा, व्याकरण, वर्तनी और शब्दों के उपयुक्त इस्तेमाल का ध्यान रखना पड़ता है। इसके अलावा उसे एक प्रचलित भाषा में लिखना पड़ता है ताकि उसे अधिक-से-अधिक लोग समझ पाएँ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि अध्यापन क्षेत्र में भी समाचार पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण उपादेयता है। आज भी हज़ारों की संख्या में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक एवं अनियतकालीन समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन विश्व भर में हो रहा है। इस तरह से देखा जाए तो विभिन्न प्रिंट माध्यमों के द्वारा सूचनाओं का सम्प्रेषण सहजता से किया जा रहा है। लेकिन शिक्षित वर्ग तक सीमित होने के कारण इसकी अपनी एक सीमा भी है। फिर भी अपनी सीमा में रहकर भी प्रिंट माध्यमों की प्रासंगिकता और उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

इलेक्ट्रोनिक माध्यम : इंटरनेट

आधुनिक तकनीकों की सहायता से पत्रकारिता और जन-संचार के विभिन्न क्षेत्रों ने अनेक इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के द्वारा प्रगति की है। विशेष रूप से रेडियो और टीवी के आने के बाद इस क्षेत्र में जो क्रान्ति आई उसी के परिणामस्वरूप ऑडियो केसेट, वीडियो केसेट, डी वी डी, फिल्म, कंप्यूटर, इंटरनेंट आदि विभिन्न इलेक्ट्रोनिक उपकरणों की सहायता से ये क्षेत्र विश्व के संबंधों की नई व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। इंटरनेट को इंटरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता या वेब पत्रकारिता जैसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। नई पीढ़ी के लिए अब यह एक आदत-सी बनती जा रही है। जो लोग इंटरनेट के अभ्यस्त हैं या जिन्हें चौबीसों घंटे इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है, उन्हें अब कागज़ पर छपे हुए अखबार उतने ताज़े और मनभावन नहीं लगते। उन्हें हर घंटे-दो घंटे में खुद को अपडेट करने की लत लगती जा रही है।

विश्व स्तर पर इंटरनेट पत्रकारिता के स्वरूप और विकास का पहला दौर था १९८२ से १९९२ तक, जबकि चला १९९३ से २००१ तक। तीसरे दौर की इंटरनेट पत्रकारिता २००२ से अब तक की है। पहले चरण में इंटरनेट खुद प्रयोग के धरातल पर था, इसलिए बड़े प्रकाशन-समूह

यह देख रहे थे कि कैसे अखबारों की सुपर इन्फॉर्मेशन-हाईवे पर दर्ज़ हो। तब एओएल यानी अमेरिका ऑनलाइन जैसी कुछ चर्चित कंपनियाँ सामने आईं। लेकिन कुल मिलाकर प्रयोगों का दौर था। सच्चे अर्थों में इंटरनेट पत्रकारिता की शुरुआत १९८३ से २००२ के बीच हुई। इस दौर में तकनीक स्तर पर भी इंटरनेट का ज़बरदस्त विकास हुआ। नई वेब भाषा एचटीएमएल (हाइपर टेक्स्ट माक्र्डअप लैंग्वेज) आई, इंटरनेट ईमेल आया, इंटरनेट एक्सप्लोरर और नेटस्केप नाम के ब्राउज़र (वह औज़ार जिसके ज़रिए विश्वव्यापी जाल में गोते लगाए जा सकते हैं) आए। इन्होंने इंटरनेट को और भी सुविधासंपन्न और तेज-रफ़्तार वाला बना दिया। इस दौर में लगभग सभी बड़े अखबार और टेलीविज़न समूह विश्वजाल में आए।'न्यूयॉर्क टाइम्स', 'वाशिंगटन पोस्ट', 'सीएनएन', 'बीबीसी' सहित तमाम बड़े घरानों ने अपने प्रकाशनों, प्रसारणों के इंटरनेट संस्करण निकाले। दुनियाभर में इस बीच इंटरनेट का काफ़ी विस्तार हुआ। न्यू मीडिया के नाम पर डॉटकॉम कंपनियों का उफ़ान आया, पर उतनी ही तेज़ी के साथ इसका बुलबुला फूटा भी। सन १९९६ से २००२ के बीच अकेले अमेरिका में ही पाँच लाख लोगों को डॉटकॉम की नौकरियों से हाथ धोना पड़ा। विषय सामग्री और पर्याप्त आर्थिक आधार के अभाव में ज़्यादातर डॉटकॉम कंपनियाँ बंद हो गईं। लेकिन यह भी सही है कि बड़े प्रकाशन-समूहों ने इस दौर में भी खुद को किसी तरह जमाए रखा। चूँकि जनसंचार के क्षेत्र में सक्रिय लोग यह जानते थे कि और चाहे जो हो, सूचनाओं के आदान-प्रदान के माध्यम के तौर पर इंटरनेट का कोई जवाब नहीं। इसलिए इसकी प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी। इसलिए कहा जा रहा है कि इंटरनेट पत्रकारिता का २००२ से शुरू हुआ तीसरा दौर सच्चे अर्थों में टिकाऊ हो सकता है।

आज के समय में कंप्यूटर ने संचार के क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। शायद ही समाज का कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें कंप्यूटर और इंटरनेट की अनिवार्यता न हो। सन् १६४२ (सौलह सौ बयालीस) में १८ वर्षीय युवा वैज्ञानिक ब्लेज पास्कल ने यह सोचा भी नहीं होगा कि उसने जिस यंत्र का निर्माण किया है वह आगे चलकर आधुनिक मानव समाज की समूची जीवनधारा को बदल देगा। हज़ारों किलोमीटर की दूरी होने के बावजूद भी कम्प्यूटर ने इस आधुनिक मानव-समाज को 'विश्व ग्राम' (Global village) के रूप में परिवर्तित कर दिया है। मीडिया के क्षेत्र में जन-संचार के एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में इन्टरनेट को उन्नति मिल पाई। विश्व के किसी भी कोने में बैठे हुए व्यक्ति को किसी भी प्रकार की सूचना को प्राप्त करने के लिए इंटरनेट से उपयोगी कोई दूसरा माध्यम है ही नहीं।

इंटरनेट सिर्फ़ एक टूल यानी औज़ार है, जिसे आप सूचना, मनोरंजन, ज्ञान और व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक संवादों के आदान-प्रदान के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन इंटरनेट जहाँ सूचनाओं के आदान-प्रदान का बेहतरीन औज़ार है, वहीं वह अश्लीलता, दुष्प्रचार और गंदगी

फैलाने का भी ज़रिया है। इंटरनेट पर पत्रकारिता के भी दो रूप हैं। पहला तो इंटरनेट का एक माध्यम या औज़ार के तौर पर इस्तेमाल, यानी खबरों के संप्रेषण के लिए इंटरनेट का उपयोग। दूसरा, रिपोर्टर अपनी खबर को एक जगह से दूसरी जगह तक ईमेल के ज़रिए भेजने और समाचारों के संकलन, खबरों के सत्यापन तथा पुष्टिकरण में भी इसका इस्तेमाल करता है। रिसर्च या शोध का काम तो इंटरनेट ने बेहद आसान कर दिया है। टेलीविजन या अन्य समाचार माध्यमों में खबरों के बैकग्राउंडर तैयार करने या किसी खबर की पृष्ठभूमि तत्काल जानने के लिए जहाँ पहले ढेर सारी अखबारी कतरनों की फ़ाइलों को ढूँढ़ना पड़ता था, वहीं आज चंद मिनटों में इंटरनेट विश्वव्यापी संजाल के भीतर से कोई भी बैकग्राउंडर या पृष्ठभूमि खोजी जा सकती है। *उदाहरण : मॉरीशस में, शनिवार १५ मई, २०२१ को घुड़दौड़ के वक्त एक जॉकी (Nooresh Juglall) अपने घोड़े से गिड़ गया, और उसको बहुत चोट आई। उसे तुरंत पास के क्लीनिक पहुँचाया गया। रात को उसकी मृत्यु हो गई और उसके दूसरे दिन उसके शव को जलाया गया। घुड़दौड़ से शमशान घाट की यात्रा तक का सीधा प्रसारण, उस वक्त उपस्थित पत्रकारों ने इंटरनेट के माध्यम से किया।*

इंटरनेट पर अखबारों का प्रकाशन या खबरों का आदान-प्रदान ही वास्तव में इंटरनेट पत्रकारिता है। इंटरनेट पर किसी भी रूप में खबरों, लेखों, चर्चा-परिचर्चाओं, बहसों, फ़ीचर, झलकियों, डायरियों के ज़रिए अपने समय की धड़कनों को महसूस करने और दर्ज़ करने का काम करते हैं तो वही इंटरनेट पत्रकारिता है। आज तमाम प्रमुख अखबार पूरे-के-पूरे इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। *(मॉरीशसीय संदर्भ में देखा जाए तो : Defi Live और Top FM live ब्रॉडकास्ट किया जाता है।)* कई प्रकाशन-समूहों ने और कई निजी कंपनियों ने खुद को इंटरनेट पत्रकारिता से जोड़ लिया है। चूँकि यह एक अलग माध्यम है, इसलिए इस पर पत्रकारिता का तरीका भी थोड़ा-सा अलग है।

मॉरीशसीय संदर्भ में जैसे हम सभी जानते हैं कि कोरोना महामारी ने पूरे विश्व में घर कर लिया, प्रतिदिन देश-विदेश की जानकारियाँ रेडियो के माध्यम से हम सुन पा रहे हैं। कहीं कहीं पर जो लोग समाचार पत्र नहीं पढ़ते हैं, वे रेडियो, टीवी, मोबाइल द्वारा इन समाचारों को ग्रहण करते हैं। Radioplus, TopFm, WazaaFm, (साथ ही साथ इन रेडियो चनेल्लों का सीधा प्रसारण Facebook पर भी लाइव किया जा रहा है।) विश्व में घटने वाली कोई भी घटना चंद क्षणों में इंटरनेट के द्वारा समाज और जन-समूह तक पहुँच जाती है।

उपसंहार :

सूचना समाज के लोगों की जिज्ञासा की भूख मिटाती है। वह उन्हें जानकारियाँ उपलब्ध कराती है जो उनके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती हैं। पहले के समय में संचार के मौखिक रूप ने जिस

प्रकार प्रसिद्धि प्राप्त की, वह आज भी बाह्य जन-संचार के रूप में प्रदर्शनियों, मेलों, नुक्कड़-नाटकों आदि के द्वारा जीवित है। इसी मौखिक रूप से विकसित होकर ही संचार ने प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के द्वारा समूचे ब्रह्माण्ड को एक कर दिया। वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में सूचना तंत्र के विकास ने भी विश्व को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। नई-नई तकनीकों के आने से सूचना-तंत्र ने आधुनिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि को तीव्र गति से विश्व-समाज के सामने सहजता से पहुँचा दिया। समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं का प्रचलन तो वर्षों पहले ही इस भूमिका को निभाता आ रहा था लेकिन आधुनिक संस्थाधनों से युक्त होने के उपरांत इस संचार-तंत्र ने इलेक्ट्रोनिक (इंटरनेट) माध्यम से जीवन के यथार्थ को इस तरह से अभिव्यक्त किया कि उसमें शेष शब्द की संभावना ही न रही।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. लिंक्स:
    - https://www.google.com/search?q=introduction+of+tv+in+mauritius&oq=introduction+of+tv+in+mauritius&aqs=chrome..69i57j69i59j0i433j0i131i433l2j69i61l3.5572j0j4&sourceid=chrome&ie=UTF-8
    - https://www.scotbuzz.org/2018/10/janasanchar.html
    - https://mycbseguide.com/questions/555260/
    - https://ncert.nic.in/textbook/pdf/kham101.pdf
    - https://www.cbsetuts.com/ncert-solutions-class-12-hindi-core-janasanchaar-maadhyam-aur-lekhan-vibhinn-maadhyamon-ke-lie-lekhan/

2. पुस्तकें:
    - पत्रकारिता और जनसंचार के माध्यम, क्रिएटिव पुब्लिकेशन, 2016
    - पत्रकारिता और सूचना-तंत्र, गोखले प्रिंटर्स, 2011
    - वेब पत्रकारिता : एक प्रामाणिक पुस्तक, श्याम माथुर, 2009
    - रेडियो पत्रकारिता, संजय कुमार, 2011, विशाल पब्लिकेशन, पटना / दिल्ली

राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी

- **गोवर्द्धन यादव**

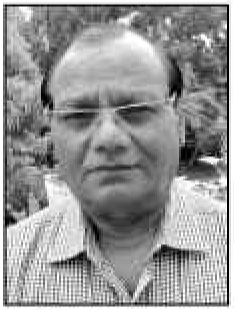

महात्मा गांधी जी ने कहा था-" कोई भी देश सच्चे अर्थों में जब तक स्वतंत्र नहीं है जब तक वह अपनी भाषा नहीं बोलता। अपनी भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी राष्ट्रभाषा उस राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक होता है। किसी भी राष्ट्र का प्रतिनिधित्व वहाँ की भाषा करती है जो राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता की भी संवाहक होती है।"

गांधीजी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रबल पक्षधर थे। वे राष्ट्रभाषा को इतना महत्व देते थे कि किसी भी मूल्य पर वे भाषा के स्तर पर समझौते के लिए तैयार नहीं थे। वे भारत के भविष्यदृष्टा थे। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के संबंध में गांधीजी का दृढ़ निश्चय उनकी वाणी में मुखरित हुआ है। उन्होंने अपने "मेरे सपनों का भारत" ग्रंथ में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा था- "अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज ही से अपने लड़कों-लड़कियों को विदेशी माध्यम के ज़रिए से दी जाने वाली शिक्षा बंद कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफ़ेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ या उन्हें बरखास्त करा दूँ। मैं पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का इन्तज़ार नहीं करूँगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे चले आएँगे।"

अंग्रेज़ी के बढ़ते वर्चस्व पर चिंतित होते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है- "अंग्रेज़ी आज इसीलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यावसायिक एवं तथाकथित राजनैतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेज़ी यह सोचकर पढ़ते हैं कि अंग्रेज़ी के पढ़े बिना उन्हें नौकरियाँ नहीं मिलेंगी। लड़कियों को अंग्रेज़ी इसलिए पढ़ाई जाती है कि इससे उनकी शादी में सहूलियत होगी। ये सारी बातें मेरी नज़र में गुलामी और घोर-पतन के चिन्ह हैं। मैं इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता कि देशी भाषाएँ इस तरह कुचल दी जाएँ।"

1918 को इंदौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के सभापति पद से अपने उद्गार प्रकट करते हुए उन्होंने चेताया था – "मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनके योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। हिन्दुस्तान को यदि सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो कोई चाहे, कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिन्दी बन सकती है। क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।" वे न केवल हिन्दी को एक राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे, बल्कि वे उसे व्यापार, वाणिज्य, न्याय तथा प्रशासन की भी भाषा बनाना चाहते थे।

गांधीजी मातृभाषा के प्रबल समर्थक तो थे ही, साथ ही वे विश्व की अन्यान्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने पर भी ज़ोर देते थे। उनका प्रबल विश्वास था कि मातृभाषा के माध्यम से अपने चिंतन का स्पष्ट अभिव्यक्तिकरण हो सकता है, वैसे अन्य भाषाओं के माध्यम से नहीं। भाषाओं के संबंध में समय-समय पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं, वे अत्यन्त ही उल्लेखनीय हैं। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है-" युवक और युवतियाँ अंग्रेज़ी खूब पढ़ें, लेकिन उनसे आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसाद भारत को और सारे संसार को उसी तरह प्रदान करेंगे जैसे बोस, राय और स्वयं कवि रवीन्द्रनाथ ने प्रदान किया था।"

उन्होंने दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं, पूर्व और पश्चिम की भाषाओं की संपन्नता का परिचय देते हुए अपील की कि इन समृद्ध भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी को समृद्ध बनाना चाहिए। ये भाषाएँ संपन्न ज़रूर हैं, परन्तु ये राष्ट्रभाषा नहीं बन सकतीं। राष्ट्रभाषा तो केवल हिंदी ही बन सकती है। परन्तु मैं तो हिंदी के लिए मर्यादा रख देना चाहता हूँ कि वह अन्य प्रांतों की भाषाओं का स्थान न ले, वह माध्यम बने।

महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1918 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना हुई। गांधीजी की इस संकल्पना के लगभग ग्यारह वर्ष पूर्व ही मद्रास(अब चैन्नई) में एक तमिलभाषी मनीषी ने हिन्दी प्रचार की नींव डाली। यह मनीषी कोई और नहीं, तमिल के सुविख्यात महाकवि सुब्रह्मण्य भारती जी थे। सर्वप्रथम भारती जी ने अपने संपादन में निकलने वाली पत्रिका "इंडिया" के 15 दिसंबर 1906 के अंक में तमिलभाषियों से हिन्दी सीखने की अपील की थी। महाकवि ने न केवल समूचे तमिलनाडुवासियों के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी थी बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्यदृष्टा के रूप में भी उन्होंने हिन्दी का पुरजोर समर्थन किया था। भारतीजी के ही नेतृत्व में 1908 में सर्वप्रथम चैन्नई के तिरुवेल्लीकेणि (ट्रिप्लिकेन) में हिन्दी वर्गों के संचालन का श्रीगणेश हुआ था। इस घटना के दस वर्षों के बाद गांधीजी की संकल्पनाओं के अनुरूप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की नींव पड़ी। इस कार्य हेतु गांधीजी ने अपने सुपुत्र देवदास गांधी को चैन्नई भेजा था।

अपने स्वराज मिशन के साथ भाषा को लेकर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा-" लाखों लोगों को अंग्रेज़ी का ज्ञान कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने सबको गुलाम बना दिया है। अगर स्वराज अंग्रेज़ी बोलने वाले भारतीय लोगों का और उन्हीं के लिए होने वाला है, तो निःसंदेह अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों, निरक्षरों और दलितों व अंत्यजों का है और इन सब के लिए होने वाला है, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

भारतीय भाषा समस्या के विषय पर गांधीजी के विचार बड़े निर्मल, वस्तुनिष्ठ और पूरी तरह व्यावहारिक हैं। वैसे भी उनके विचार प्रांजल और पारदर्शी होते हैं। जिन स्रोतों से उनके भाषा

विषयक विचार उपलब्ध होते हैं, उनमें उनके लेखों का प्रमुख स्थान है, जो यंग इण्डिया, हरिजन-सेवक, हरिजन बन्धु आदि में प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी सामग्री "इण्डियन होमरुल" जैसे पुस्तकों और तत्कालीन विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए उनके पत्रों से मिली है। गांधीजी ने भाषा विषय में सबसे पहले अपने विचार 1909 में अपनी पुस्तक "हिन्द-स्वराज' और होमरुल"के 18 वें परिच्छेद में यों व्यक्त किए हैं " हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को हिन्दी का और कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वले हिन्दुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी होनी ही चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपियाँ जानना ज़रूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस में व्यवहार से अंग्रेज़ी को बाहर कर सकेंगे।"
गांधीजी की इन भाषिक मान्यताओं के पीछे लोक-संग्रहक संतुलन का भाव प्रमुख था। लोकभाव को अक्षत और अक्षुण्ण रखते हुए उसके लिए वे कारगर तरीका अपनाने की बात कहते थे, वह यह कि भारत की प्रत्येक जाति का निवासी पहले तो अपने को ठीक से समझे, अपने जातीय संस्कार की भाषा को समझे, फ़िर दूसरे की भाषा का ज्ञान भी रखे, फ़िर सामाजिक या राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए हिन्दी से भी अवगत हो।
गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना दिनांक 4 जुलाई 1936 को वर्धा में हुई। महात्मा गांधी के निवास स्थान पर इस समिति की पहली साधारण बैठक हुई, इसमें कुल 21 सदस्य थे। इस बैठक में जिन पदाधिकारियों का चुनाव हुआ, उसमें डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी को अध्यक्ष, सेठ जमनालाल बजाज को उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, श्री मोटूरी सत्यनारायण को मंत्री, श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल को संयुक्त मंत्री बनाया गया। हिन्दी प्रचार समिति का कार्य गांधीजी की देखरेख में चले, इसीलिए उसका मुख्य कार्यालय वर्धा में रखा गया।
हिन्दी प्रचार समिति राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रही थी। अतः हिन्दी की जगह "राष्ट्रभाषा" शब्द लेने का प्रस्ताव पारित हुआ। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की दो बैठकें 12.04.1942 तथा 21.06.1942 को हुईं। इन दोनों बैठकों में महात्मा गांधी, डॉ.राजेन्द्रप्रसाद, काका काहब कालेलकर, तथा श्रीमन्ननारायण उपस्थित थे। दिनांक 12.07.1942 को सेवाग्राम में गांधीजी की कुटी में नवगठित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पहली बैठक हुई। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। समिति के इस बैठक में मंत्री पद के लिए भदन्त आनन्द कौसल्यायन को और सहायक मंत्री के लिए श्री रामेश्वरदयाल दुबे को चुना गया।
1946 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति की रजत जयन्ती का उद्घाटन करने के पश्चात् सार्वजनिक सभा को सम्बोद्धित करते हुए उन्होंने कहा था- "कुछ समय बाद हिन्दुस्तान आज़ाद

होगा और आज़ाद हिन्दुस्तान की राजभाषा हिन्दी होगी। इसलिए मैं युवा पीढ़ी से अपील करता हूँ कि वे अभी से हिन्दी सीखना शुरू करें और देश के आज़ाद होते ही शासन के समस्त कार्य-कलाप हिन्दी में सम्पन्न करें, ताकि अंग्रेज़ी का वर्चस्व अपने आप समाप्त हो जाए।"

दक्षिण के चार प्रान्तों (केरल, तमिलनाडु, आंध्र,और कर्नाकट) छोड़कर समिति का कार्यक्षेत्र पूरे भारत में स्वीकृत किया गया। इसी संदर्भ में वर्ष 1954 से पहले मध्य-भारत राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गठित की गई और सीतामऊ के महाराजकुमार रघुवीरसिंह इसके अध्यक्ष बने। मध्य प्रदेश का गठन होने के बाद समिति को मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में परिवर्तन कर प्रांतीय कार्यालय इंदौर से भोपाल स्थानान्तरित किया गया। समिति के कार्यों को स्थायित्व देने के लिए मध्यप्रदेश शासन ने भूखण्ड दिया और शासन के तथा जनता के सहयोग से हिन्दी भवन भोपाल का निर्माण हुआ। समिति के संस्थापक मंत्री-संचालक श्री बैजनाथप्रसाद दुबे जी थे। 28 नवंबर 1988 को उनके निधन के बाद यह दायित्व श्री कैलाशचन्द्र पंत जी को सौंपा गया। तब से लेकर वर्तमान समय में हिन्दी भवन ने अपने अनूठे कार्यक्रमों की वजह से देश-प्रदेशों में ही नहीं अपितु विदेशों तक अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। यह अभिव्यक्ति आमजन की अस्मिता से लेकर राष्ट्र के आगत भविष्य निर्माण के लिए भी हो सकती है। इसीलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषा तक ही सीमित नहीं होता। हम जो सोचते हैं अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करते हैं और यह अभिव्यक्ति हमारी पहचान बनाती है। हमने अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई हिन्दी के माध्यम से जीती है। आमजन की भाषा की राष्ट्रीय गरीमा को प्रतिष्ठित करना एवं उसे कायम रखना है।

भारत के कोने-कोने में बोली जाने एवं समझी जाने वाली हिन्दी ही एकमात्र भाषा है, जो सरल और वैज्ञानिक लिपि में लिखी जाने के कारण अत्यन्त सुव्यवस्थित, संपन्न और लोकप्रिय है। भारत के अधिकांश भागों में प्रयोग किए जाने के कारण हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी एक प्रदेश के लोगों को दूसरे प्रदेशों के लोगों को जोड़ती है, और राष्ट्रीय एकता का भाव जगाती है। हिन्दी की इसी विशिष्टता के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने 14 सितम्बर 1949 को देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को, संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया तथा 26 जनवरी 1950 को संविधान में इसका प्रावधान किया।

वह गांधी, जिसने स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई में हिन्दी को माध्यम बनाया, वह गांधी, जिसने नगर-नगर, शहर-शहर जाकर हिन्दी का घनघोर प्रचार-प्रसार किया, वह गांधी, जिसने हिन्दी के अलावा कई भाषाओं को सीखने का आह्वान किया था, वह गांधी, जिसने घोषणा कर दी थी कि "गांधी अंग्रेज़ी भूल गया", वह गांधी जिसने रामराज्य की विशाल परिकल्पना की थी, वह गांधी जो तत्काल अंग्रेज़ी स्कूलों और कॉलेजों को बंद कर देने की बात कहते थे, उसी गांधी

के विचारों को भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् विस्मृत कर दिया गया और हिन्दी के समकक्ष अंग्रेज़ी को पन्द्रह वर्षों के लिए लाद दिया गया।

इन पन्द्रह वर्षों की अवधि को लेकर हिन्दी के प्रबल पक्षधर राजर्षि टण्डन जी ने सितम्बर 1949 में राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर भारतीय संविधान-सभा में ऐतिहासिक भाषण दिया था- "हिन्दी कोई नई भाषा नहीं है। जब आयरलैण्ड ने अपना संविधान बनाया, तब उसने आयरिश भाषा को अपनाया था, जिसमें न तो अधिक साहित्य था और न ही पर्याप्त शब्दावली ही थी। किन्तु, फ़िर भी आयरलैण्ड ने उसे ही अपनाया। जबकि हमारी हिन्दी तो अत्यन्त शक्तिशाली भाषा है।" उनका स्पष्ट संकेत था कि जो काम आज हो गया, वह हो गया, ज़रूरी नहीं कि वह पंद्रह वर्ष बाद हो सकेगा। उनकी भविष्यवाणी सही निकली। कई पंद्रह वर्ष बीत गए, हम जहाँ थे, वहीं खड़े हैं।

अपने विशाल शब्द भण्डार, वैज्ञानिकता, शब्दों और भावों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति के साथ ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में अपनी उपयुक्तता एवं विलक्षणता के कारण और बिना राजाश्रय के हिन्दी विश्व पटल पर एक प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त भाषा के रूप में उभर चुकी है। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिन्दी का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विस्तार बहुत तेज़ी से हुआ है। भूमंडलीकरण के दौर में देशों के बीच की भौगोलिक दूरियाँ कम हुई हैं। हिन्दी केवल जनभाषा के रूप में ही नहीं बल्कि विश्व बाज़ार के रूप में अपने को ढाल रही है। आज वह ग्लोबल भाषा के रूप में भी अपना वर्चस्व दिखा रही है। हिन्दी आज बाज़ार की भाषा बन चुकी है। यही कारण है कि विदेशी कंपनियों को अपने उत्पाद की बिक्री के लिए हिन्दी का सहारा लेना पड़ रहा है। लगभग अस्सी करोड़ आमजनों द्वारा व्यवहृत और विश्व के 176 से अधिक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली हिन्दी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी है। हिन्दी संपूर्ण भारत के जन-जन की वाणी है। हिन्दी का अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। विश्व भाषा के रूप में हिन्दी का विकास उसके अपने गुणों के कारण ही हो रहा है।

हम सभी हिंदी प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्व की तमाम भाषाओं में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा में इसका सर्वश्रेष्ठ स्थान निरूपित हो चुका है। निश्चित ही हमारे लिए यह गौरव का विषय तो है ही, साथ ही हमारी जिम्मेदारियाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं कि हम इसे इसी क्रम में बनाए रखने के लिए सतत संघर्षशील रहें।

103, कावेरी नगर,छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

कविता

भाषा

- देवी नागरानी

लोरी सुना रही है, हिंदी ज़ुबाँ की ख़ुशबू
रग-रग से आ रही है, हिन्दोस्ताँ की ख़ुशबू
भारत हमारी माता, भाषा है उसकी ममता
आंचल से उसके आती सारे जहाँ की ख़ुशबू
भाषा अलग-अलग है, हर क्षेत्र की ये माना
है एकता में शामिल हर इक ज़ुबाँ की ख़ुशबू
भाषा की टहनियों पे हर प्राँत के परिंदे
उड़कर जहाँ भी पहुँचे, पहुँची वहाँ की ख़ुशबू
शायर ने जो चुनी है शेरो-सुख़न की भाषा
आती मिली-जुली सी उसके बयाँ की ख़ुशबू
महसूस करना चाहो, धड़कन में माँ की कर लो
उस अनकही ज़ुबाँ से, इक बेज़बाँ की ख़ुशबू

परदेस में जो आती मिट्टी की सौंधी- सौंधी
ये तो मेरे वतन की है गुलिस्ताँ की ख़ुशबू

दीपक जले हैं हरसू भाषा के आज 'देवी'
लोबान जैसी आती कुछ-कुछ वहाँ की ख़ुशबू।

हमें अपनी हिंदी ज़ुबाँ चाहिए, सुनाए जो लोरी वो माँ चाहिए
कहा किसने सारा जहाँ चाहिए, हमें सिर्फ़ हिन्दोस्ताँ चाहिए
जहाँ हिंदी भाषा के महके सुमन, वो सुंदर हमें गुलसिताँ चाहिए

जहाँ भिन्नता में भी हो एकता, मुझे एक ऐसा जहाँ चाहिए
मुहब्बत के बहते हों धार जहाँ, वतन ऐसा जन्नत-निशाँ चाहिए
तिरंगा हमारा हो ऊँचा जहाँ, निगाहों में वो आसमाँ चाहिए
खिले फूल भाषा के 'देवी' जहाँ, उसी बाग़ में आशियाँ चाहिए।

गोवर्धन सिंह फ़ौदार "सच्चिदानन्द" की दो कविताएँ

चलो चलें गाँवों की ओर

स्मरण तुम्हारा करूँ, कितना बताऊँ तुम्हें
रजनी दिवस तेरा, यादों में बिताते हैं।

शहर ढिंढोरा सुन, थिरक पहुँच गए
पूरब पश्चिम बीच, गाँव मन भाते हैं।

संस्कृति संस्कार संग, सभ्यता लाचार खड़ी
कहानी पुरानी यहाँ, भेद भाव गाते हैं।

जननी जनक धरा, गलियाँ मौसम प्यारा
हृदय घुटन कहे, चलो गाँव जाते हैं।

शराब

शराब तुझे क्या लाज न आती
मुँह उठाए दौड़ी आती
बनने बीच दरार
रहती अवसर ताक में
दुख, दर्द, व्रत, पर्व
उत्सव क्या त्योहार
हर पल हर हालात में
रंग में भंग करने आती.. शराब..

चढ़कर सिर तू
जब जब बोली
बहे आँसू बिखरे सपने
नष्ट हुआ घर बार
चलेगी अब न तेरी मनमानी
छोड़ गए हम सब नादानी
नूतन वर्ष पर पास न आना
बन्द हैं तेरे सारे द्वार
आती नफ़रत फैला जाती.. शराब..

बित गयी सो बात गयी
अब नहीं अब कभी नहीं
ज़हर न घोलने देंगे तुम्हें अब
आँखें अब न करेंगे चार
तुम से प्यारा मुझको मेरा
हित मित और परिवार
जीना तू दुश्वार है करती
स्वर्ग को नर्क बना जाती.. शराब..

- **मॉरीशस**

38

समीक्षा

मन्नू भंडारी द्वारा लिखित "रानी माँ का चबूतरा" कहानी में नारी

करिश्मा देवी रामझीतन नारायण

हिंदी की कहानी लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का अग्रणी स्थान है। उनकी रचनाओं में नारी-जीवन के उन अन्तरंग अनुभवों को विशेष रूप से अभिव्यक्ति दी गई है जो उनके नितांत अपने हैं तथा पुरुष कहानीकारों की रचनाओं में प्रायः नहीं मिलते। "रानी माँ का चबूतरा" कहानी में निम्न वर्ग वाली नारी का चित्रण है। यह उस गुलाबी की कहानी है जिसे कभी रानी माँ के चबूतरे पर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। रानी माँ की अपेक्षा उसे अपने पर अत्यंत विश्वास था। रानी माँ ने अपने पुत्र को शीतला माई के कोप से दूर रखने के लिए, एक साधु के कहने पर सात दिन तक अन्न-जल का त्याग किया था। उसका पुत्र तो ठीक हो गया था परन्तु रानी माँ जाती रही। सेठजी ने उनकी याद हेतु एक चबूतरा बनवाया था। हर पूरनमासी को नगर की महिलाएँ वहाँ दीया जलाकर अपने बच्चों के लिए मनौती मानती हैं।

<u>स्त्री यातना तथा करुणा की मूर्ति</u>

गुलाबी दो बच्चों की माँ है तथा पति उसका पियक्कड़ है। शराबी पति से तंग आकर उसको झाड़ू मारकर घर से निकाल दिया है। गुलाबी दिन भर मज़दूरी करती है। फिर शाम को आकर बच्चों को कुछ न कुछ खिलाती तथा खुद का पेट भरती है। उदाहरण के लिए:

"वह यातना तथा करुणा की मूर्ति है परन्तु किसी की दया की पात्र नहीं बनना चाहती। अपनी स्थिति से स्वाभिमानपूर्वक अकेली ही लड़ती है।"

अपने बच्चों के पेट को भरने के लिए कोई भी माँ जैसे-तैसे कोई भी काम करने को तैयार रहती है परन्तु अपने बल पर। प्राचीन काल में ऐसा देखने को मिलता था कि एक माँ अपने अंश की जान बचाने हेतु कड़ी से कड़ी तपस्या कर सकती है। मन्नू भंडारी ने *रानी माँ* का उदाहरण लेकर यही दर्शाया है, यथा:

"बेटी, तेरा बच्चा मौत के मुँह में है, ...सात दिन तू अन्न-जल का त्याग कर दे, तेरा बच्चा उठ खड़ा होगा। रानी माँ..., पर वह नहीं मानी तो नहीं ही मानी।...सात दिन बाद बच्चा तो उठ खड़ा हुआ पर रानी माँ जाती रही।"

इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने यह दर्शाया है कि जननी अपने बच्चों के लिए हर प्रकार का कष्ट सह लेने को तैयार रहती है। हम देखते हैं कि रानी की भांति गुलाबी भी अपने

बच्चों के जीवन के लिए अपने प्राण की बलि ज़रूर दे रही है लेकिन अंधविश्वास में बंधकर नहीं बल्कि संघर्ष कर वह अपने बच्चों का भविष्य बना रही है।

स्वाभिमानी स्त्री

गुलाब न लोक-निंदा की परवाह करती है न लोगों की दया की भीख स्वीकारती है। वह जानती है कि लोग कोरी सहानुभूति जताते हैं। मोहल्ले के काका से गुलाबी को पता चलता है कि सरकार द्वारा एक 'शिशु सुरक्षा केंद्र' खुलने वाला है। वहाँ पर पाँच रूपए में बच्चों की पढ़ाई तथा देखभाल की जाएगी। गुलाबी अपनी मेहनत की कमाई से अपने बच्चों को इसमें भर्ती करवाना चाहती है न कि गाँव के चंदे से। मन्नू भंडारी कहानी में गुलाबी का स्वाभिमानी पक्ष एक दूसरी जगह तब दिखाती हैं जब उसकी पुत्री मेवा रामेसुर की दी हुई चूड़ियाँ पहनती है। गुलाबी कहती है कि:

""...दी हैं तो क्योंदी हैं?" हम क्या भिखमंगे हैं जो किसी का दिया पहनेंगे। आज मेरे घर में कोई मूंछोंवाला नहीं बैठा है तो सब लोग भीख देने चले हैं।..."

परिस्थिति एवं लोक निंदा से घबराकर कमज़ोर होने की अपेक्षा मन्नू भंडारी की गुलाबी स्वाभिमान से हिम्मत के साथ परिस्थिति का मुकाबला कर रही थी। गुलाबी यहाँ पर अपनी स्थिति की चर्चा करते हुए दिखाती हैं कि वास्तव में समाज में रहने वाले लोग किस प्रकार नारी को बिना जाने आंकते हैं। यथा: -

"...आ हा! बड़े आए बस्ती वाले। पहले कोठरी खोल कर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया।..."

आंकने में समाज हमेशा आगे रहा है परन्तु बहुत कम ऐसे लोग हैं जो उठकर उस नारी की मदद करेंगे।

नारी देवी स्वरूपी

डॉ लता सुमंत (१९४४ , पृ.३६) के अनुसार:

'मन्नू भंडारी ने साहित्य की युगों पुरानी कथा-रूढ़ियों के मलबे के नीचे से, नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण कर, उसे प्राय: यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है।"

लेखिका 'रानी माँ का चबूतरा' कहानी में यह दर्शाना चाह रही है कि हालाँकि पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति है फिर भी कई जगहों पर तथा किन्हीं हालातों में नारियों की पूजा भी की जाती है।

क्या एक ऐसी स्त्री समाज के लिए पापिनी को सकती है जो अपनी औलाद के लिए अपने प्राण की बलि चढ़ाए? नारी का सम्मान करते हुए, मन्नू भंडारी ने रानी का उदाहरण लेकर कहा है:

"...अरथी उठी तो आसमान से केसर की बूँद बरसी थीं। ...इतनी भीड़ में से क्या मजाल जो एक छींटा भी दूसरे पर पड़ जाए; खाली अरथी पर पड़ रहे थे छींटे।...."

उपरलिखित उदाहरण में उस नारी की पूजा का दृश्य मिलता है जिसे भले ही अन्धविश्वासी होकर भी लेकिन अपने पुत्र की जान बचाने के लिए एक कठोर तपस्या को भी स्वीकार कर लिया था। नारी अपमान का उदाहरण इन पंक्तियों में स्पष्ट हैं:

"नाम मत लो उस चुड़ैल का मेरे सामने। वह कोई माँ है, कसाइन है, कसाइन। नहीं तो रानी माँ के चबूतरे....भगवान करे उसका सत्यानाश को जाए। सारी बस्ती पर किसी दिन पाप लादेगी।"

मेहनती स्त्री

गुलाबी यह सहन नहीं कर पाती कि उसके विरूद्ध लोग अनाप-शनाप बोलें। काका उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहते हैं: -

"...अब आदमी तो उसका था ही ऐसा कि मार कर निकाल दिया जाए। वह पसीना बहाकर कमाती और वह घर में बैठा दारू पीता।..."

इस कहानी में मन्नू भंडारी इन नारियों की प्रशंसा करती हैं जो अपने पति के नहीं बल्कि अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने घर को चला रही हैं। हाँ! पुरुष के होते हुए अगर वे घर को संभालते तो बेहतर होता परन्तु आज के समाज में ऐसी अन्य महिलाएँ जीती हैं जिनके पति या तो गुज़र गए हों या छोड़ के चले गए हों या तो शराबखोर हैं। आधुनिक युग में भी ऐसी महिलाएँ हैं जो घरेलू हिंसा के शिकार हैं। लेकिन, मन्नू भंडारी की इस कहानी के माध्यम से दृष्टिगोचर है कि प्राचीन काल की भांति वे नारियाँ चुप-चाप अत्याचार सहन नहीं करती हैं। आधुनिक युग की महिलाएँ शिक्षित हों या न हों, वे अपने हक़ के लिए लड़ना जानती हैं।

गुलाबी स्वयं जीता-जागता ममत्व है। उसे रानी माँ के चबूतरे पर आने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपनी संतानों की भलाई के लिए गुलाबी ने जी तोड़ मेहनत की। खुद तीन दिन तक भूखी रही लेकिन गुलाबी ने माँ तथा पिता दोनों की भूमिकाएँ निभाकर अपने बच्चों के लिए काम किया। अर्थार्जन करना उसी की ज़िम्मेदारी थी तथा संभालना भी।

सारा शगुफ्ता का कांटेदार पैरहन - अमृता प्रीतम की ज़ुबानी

- देवी नागरानी

"मैं मौत के हाथों में एक चिराग़ हूँ
जन्म के पहिए पर मौत के रथ देख रही हूँ
ज़मीनों में मेरा इंसान दफ्न है
सजदों से सर उठा लो
मौत मेरी गोद में एक बच्चा छोड़ गई है। "

ये शब्द नहीं, पिघलती हुई शब्दावली की रूदाद है जो सारा शगुफ्ता की कलम से सफ़ेदी पर कालिख पोत रही है। पढ़ते पढ़ते दिल की धड़कनों में संचार होने लगता है, लगता है-

सलीबों पर टंगे हुए हैं लफ्ज़
दर्द की ज़ुबां पर लरज़ रहे हैं लफ्ज़...!

आंसुओं का ज़ायका लफ्ज़ दर लफ्ज़ हर दिल अज़ीज़ को ज़रूर कभी न कभी, कहीं न कहीं हुआ होगा उन्हें, जिन्हें आज भी अपनी औलाद के लिए कफ़न की तलाश है! जिंदगी के आगामी दिनों में अमृता प्रीतम का नावेल 'बंद दरवाज़ा' पढ़ा, जिसने मेरे भीतर इतने दरवाज़े खोल दिए कि मैं आज तक वापसी के दरवाज़े तक नहीं पहुँच पाई हूँ। आज जब सारा शगुफ्ता की 'आँखें' मेरी आंखों के सामने से गुज़री, तो जाना कि एक माँ को मिट्टी के खिलौने से कैसे रिझाया जाता है। ऐसे जैसे वह मोहन-जदड़ो का एक हिस्सा है और वह बच्चा उसके वजूद का एक कलात्मक हिस्सा हो। इसीलिए जब सारा शगुफ्ता के आत्मकथ्य का एक हिस्सा पढ़ा और साथ में बेबाकी भरी तेज़ाबी तेवरों वाली उनकी शायरी पढ़ी तो मुझे वह मोहन-जोदड़ो की किसी नर्तकी के सौंदर्यमय इंद्रजाल के फैलाव में, एक तपस्विनी की प्रतिज्ञा समान लगी। इस्टोपा से नीचे उतरते ही मोहन-जोदड़ो के खंडहरों की वीरान गलियों में जिस तरह बेखुदी में नाचती झूमती नर्तकी 'संबारा' के बारे में सुना-पढ़ा, कुछ ऐसे ही सारा शगुफ्ता के जीवन और जीवनी को करीब से देखने, जानने और महसूस करने वाली महबूब लेखिका अमृता प्रीतम ने सारा शगुफ्ता के शब्दों को दोहराते हुए लिखा है -"ऐ खुदा, मैं बहुत कड़वी हूँ, पर तेरी शराब हूँ !' और मैं उसकी नज़रों और उसके खत को पढ़ते-पढ़ते खुदा के शराब की बूँद-बूँद, घूँट-घूँट कर पी रही हूँ। " अमृता प्रीतम ने अपने दिल के दर्द को खुलासा करते हुए लिखा है:

तेरे इश्क की एक बूंद
इसमें मिल गई थी इसलिए मैंने उम्र की सारी कड़वाहट पीली..!

ऐसे बेलौस शब्दों में अपने जज़्बों को शब्दों में दर्ज करना एक प्रबुध अनुभूति है, जिसके अस्तित्व के लिए सुध का होना काफ़ी नहीं। ऐसी कायनाती पंक्तियों की तख़्लीक़ करने के

लिए ऐसी रोशनी की दरकार है, जो रोशनी तब हासिल होती है जब खून का कतरा कतरा जलता है। और एक कलाकार-कलमकार उस रोशनी की छांव में बदबूदार रवायतें, रिवाजों और रस्मों से खिलाफत करने पर उतारू हो जाता है। पर अमरता प्रदान करती पीड़ा, तन-मन से और ऊपर उठकर एक अनकहे शब्दों की गाथा को दीवानगी की हद तक दर्ज़ करती-कराती हुई सारा की रूदाद से वाकिफ़ करा रही है —

आतिश दानों से अपने दहकते हुए सीने निकालो
वर्ना आखिर दिन आग और लकड़ी को अशरफ़-उल-मख्लूक़
बना दिया जायेगा...

"मैंने पगडंडियों का पैरहन पहन लिया है" कहने वाली सारा ने अपने बच्चे को बिना कफ़न अपने दिल की तहों में दफ़न किया है। यह रूदाद तो पत्रों को भी पिघलने पर मजबूर करती है। ज़मीन की पथरीली पगडंडियों पर चलते-चलते इंसान जब लहूलुहान होता है, तब आयतें लिखीं जाती हैं। दर्द जब कतरा कतरा रिसने लगता है तो कलम से शब्द नहीं आयतें दर्ज़ हुई जाती हैं। उनके आगे कोई लफ्ज़ नहीं होता बयाँ करने के लिए, सिर्फ़ आँख के आंसू होते हैं। सीलन भरे माहौल की घुटन भी इन शब्दों में क़ैद नहीं हो पाई हैं जब सारा शगुफ्ता की कलम लिखती है---

आँगन में धूप न आए तो समझो तुम किसी ग़ैर-इलाक़े में रहते हो
मिट्टी में मेरे बदन की टूट फूट पड़ी है हमारे ख़्वाबों में चाप कौन छोड़ जाता है
और आगे..... हमें मरने की मोहलत नहीं दी जाती
क्या ख्वाइश की मियान में हमारे हौसले रखे हुए होते हैं..!

सच के सामने आईना रखते हुए अमृता प्रीतम की शब्दावली उसी दर्द भरी आह को बेज़ुबानी की भाषा में कहती है अपनी प्रिय सखी के पिघलते दर्द की बयानी।

बर्क भी जब आसमान में बादलों के वर्क उलटती है
मेरी कहानी भटकती है - आदि ढूंढती हैं, अंत ढूँढती है !

और यही आयतों की सिलसिलेवार अभिव्यक्ति है जहाँ 'सारा' अस्पताल का बिल भरने के लिए अपने मुर्दे बच्चे को अमानत के तौर नर्स के पास छोड़ गई। ऐसी ही अंगारों की आंच पर लेटी 'सारा' खुद एक माँ और उस जैसी और भी कितनी मजबूर माएँ जो दर्द की हांडी में पकने वाली पीड़ा को सीने में दाबे, जीती हैं, मरती हैं, उनके भीतर की सनसनाहट को एक व्यक्तिगत रूदाद के पहलू की तरह ज़ाहिर करते 'सारा' ने दर्ज़ किया है:

'मौत की तलाश मत लो इंसान से पहले मौत जिंदा थी
टूटने वाले ज़मीन पर रह गए मैं पेड़ से गिरा साया हूँ
आवाज़ से पहले घुट नहीं सकती मेरी आँखों में कोई दिल मर गया है!"

और शायद औरत, औरत के दिल के तहलके से वाकिफ होते हुए अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर लिखा हुआ सच अमृता प्रीतम सामने ले आती हैं –

मिट्टी के इस चूल्हे में इश्क की आंच बोल उठेगी मेरे जिस्म की हंडिया में दिल का पानी खौल उठेगा

सोचने वाली बात है, वह कौन सी दीवानगी के तहत ऐसे पागलपन की परिधि में सोच का यह संकल्प शब्दों में समाया होगा। जिसके लिए अमृता प्रीतम 'सारा' के दर्द का ज़हर पीते हुए कह उठती है: " यह ज़मीन वह ज़मीन नहीं है जहाँ वह (सारा) अपना एक घर तामीर कर लेती, और इसीलिए उसने घर की जगह एक कब्र तामीर कर ली। लेकिन कहना चाहती हूँ कि सारा कब्र बन सकती है, कब्र की खामोशी नहीं बन सकती! दिल वाले लोग जब भी उसकी कब्र के पास जाएँगे, उनके कानों में सारा की आवाज़ सुनाई देगी:"

आज एक सोच ने मुझे जकड़ लिया है। क्या इंतिहा–ए-दर्द सिर्फ़ औरत के दिल को टटोलता है, चोट पहुँचता है, छलनी करते हुए उसके प्यार भरे दिल को चूर-चूर कर देता है? ला-इलाज इस मर्ज़ को बयाँ करते करते अमृता प्रीतम के शब्द किसी भी ज़ख्म का मरहम बनने में नाकाम रहे हैं। ..

तेरे इश्क के हाथ से छूट गई और जिंदगी की हंडिया टूट गई
इतिहास का मेहमान चौके से भूखा उठ गया...

दर्द जब कतरा कतरा रिसने लगता है तो कलम से शब्द नहीं इतिहास की बुनियाद रखी जाती है। सारा ने उसी घर में, जहाँ शायर और नक़ाद आते और फलसफे झाड़ते, वहीं आदमीयत की बू के बीच रहकर गुज़ारा किया। उसके अपने शब्दों में "वही फलसफे रोज़ पकते और मैं भूख को निगलते हुए झोपड़ी की ज़मीन पर चटाई पर लेटी दीवारें गिना करती। '

जब किरदार अपनी बेबसी को सामने खड़ा हुआ होता है और खुद से गुफ्तगू करता दिखाई देता है, तो उसे होश कहाँ होता है। सारा के नाम पर कीचड़ उछालने की नौबत यहाँ तक आई कि उसे बदचलन कहते हुए 'तलाक' हासिल करवा दिया गया। लेकिन सारा को बदचलन, बदकिरदार, आवारा ठहराए जाने का ग़म न था, था तो अपनी कोख जाये बच्चे से दूर होने का। कई छिछोरे लांछनों को स्वीकारते हुए सारा शगुफ्ता ने अपनी लेखनी में दर्ज़ करते हुए लिखा है -

'मैदान मेरा हौसला है अंगारा मेरी ख्वाहिश हम सर पे कफ़न बांध कर पैदा हुए हैं-- कोई अंगूठी पहनकर नहीं/ जिसे तुम चोरी कर लोगे' आगे उसकी अपने जीवन की बेहद नग्न सच्चाई से हमें रूबरू करवाते हुए सारा ने लिखा है- 'सातवाँ महीना पेट, शरीर में दर्द शदीद! इल्म का गुरूर सातवें आसमान पर, पति बिना आँख झपके चला गया महफिलों को रंगीन बनाने। मेरी कराहती चीखों की आवाज़ सुनकर मकान मालकिन मुझे अस्पताल छोड़ आई। ' सारा की गाथा उसी के लफ़्ज़ों में आगे कह रही है -" मेरे पेट में दर्द और हाथ में पांच कड़कड़ाते हुए नोट

थे। दर्द के गर्भ से जन्म लिया मेरे बच्चे ने जो तौलिये में लिपटा हुआ मेरे बराबर में लिटाया गया। '

''पांच मिनट के लिए बच्चे ने आँखें खोलीं और फिर क़फ़न कमाने चला गया ...''

एक माह के भीतर प्रसव पीड़ा की ज्वाला और भड़की, भड़कती रही और शोला बन कर एक ललकार बनी। उसके पास था मुर्दा बच्चा और पांच रुपये। डॉक्टर ने 295 रुपये का बिल हाथ में धर दिया। तपते बदन की आग गवारा करते हुए घर पहुँची, घर क्या अपनी झोपड़ी में पहुँची। स्तनों से दूध बह रहा था, उसे गिलास में भरकर रख दिया। ...!

शायर पति को खबर दी। दो पल की खामोशी की रस्म अदा हुई और फिर वही गुफ्तगू वही फलसफे अमल में लाये गए। "मैं उठी, गिरती पड़ती एक दोस्त के पास पहुँची। ₹300 उधार लिये और अस्पताल पहुँचकर 295 रुपये का बिल भरा। अब मेरे पास एक मुर्दा बच्चा और 5 रुपये थे। डाक्टरों को यह कहते हुए कि –"आप लोग चंदा इकट्ठा करके बच्चे को कफ़न दें, और इस की क़ब्र कहीं भी बना दें। "

"बे हताशा बेहोशी की हालत में मैं बस में चढ़ी, टिकट नहीं ली, पर 5 रुपए कंडक्टर के हाथ में थमाए और घर पहुँची। गिलास में दूध रखा हुआ था, कफ़न से भी ज़्यादा उजला।

'मैंने अपने दूध की कसम खाई। शेर मैं लिखूँगी, शायरी मैं करूँगी, मैं शायरा कहलाऊँगी। ' और दूध के बासी होने के पहले मैंने एक नज़्म लिख ली थी। बावजूद इसके शायद मैं कभी अपने बच्चे को कफ़न दे सकूँ। जिसकी असली कब्र ही मेरे दिल में बन चुकी हो...उसे मैं क्या दे सकती हूँ?

मेरे जज़्बे अपाहिज कर दिए गए हैं, मैं मुकम्मल गुफ्तगू नहीं कर सकती
मैं मुकम्मल उधार हूँ, मेरी कब्र के चिरागों से हाथ तापने वालो
ठिठुरे वक़्त पर एक दिन मैं भी कांपी थी!

अपनी नज़्म 'आँखें सांस ले रही हैं' में एक मुकम्मल बेचैनी का बयान करने वाली पाकिस्तानी शायरा सारा शगुफ्ता की ये सतरें हैं। सारा ने 4 जून 1984 को 29 साल की उम्र में खुदकुशी कर ली। इससे पहले वह ऐसी चार कोशिशें और कर चुकी थी। आखिर वो कैसी जिंदगी थी जिसकी शिद्दत को बार-बार इस नतीजे तक पहुँचने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह एक नारी के मन की अस्त-व्यस्त जीवन गाथा का अंश है, पर यकीनन एक माँ की रूदाद भी है। फक़त एक माँ की सूनी कोख की रूदाद नहीं, धरती माँ की पुकार है जो अपने सपूतों को आवाज़ दे रही है, एक सुकून परस्त जीवन के लिए, जो खून पसीने से सींचा गया हो, अमन की आबोहवा से फल-फूला हो। तब कहीं जाकर जीवन एकाकी रूहों के लिए एक ग़ैबी चादर बन पाए। ऐसी अभिव्यक्ति करने वाली शायरा में ऐसी शिद्दत की ताकत होती है जिस की उड़ान

हद-लाहद की मोहताज नहीं। उसकी तीसरी आंख वक़्त के गर्भ से घूम आती है, जिसकी खुशबू अमृता प्रीतम के शब्दों से एक ऐलान बनकर बिखरती है.....!

किस्मत ने है रुई पिंजाई ज्यों-ज्यों चरखा गूँज सुनायें
कांप रही है सांस जुलाहिन काँप रही है तकली।

नदी के उफान के पश्चात् शांत सागर में बूंद के समां जाने का प्रयास इतना भारी है कि गहराइयों के सीने में वह बूँद सीप बने बिना नहीं रह सकती!...

...

अलविदा ऐ साथी
अलविदा ऐ साथी, फरेबी फ़ितरत के तुम वारिस,
मैं शातिरता से हूँ नावाकिफ़,
खुद को लुटा कर अब सीखी हूँ,
और विश्वास के साथ कहती हूँ-
"तुम अपनी दुनिया बसाओ,
मैं अपनी फना करूँ
अपना अंत लाकर उस वजूद के साथ,
समस्त कायनात का खात्मा करूँ,
अपने ही वारिस को अपनी कोख में,
दफ़ना कर खुद को फ़ना करूँ'
अभी तक विश्वास नहीं आता
कि मेरी कोख में
मेरे और तेरे बच्चे के भ्रूण में,
मेरे और पराए खून की मिलावट है
हाँ तुमने कहा था, और मैंने सुना था
मेरे विश्वास पर यह तुम्हारे विश्वासघात का वार था
सच कहती हूँ-'वह तुम्हारा ही बच्चा है,
तुम कहते हो 'नहीं'
सच क्या है, तुम भी जानते हो और मैं भी
पर अब, मैं खुद मुख्तियार हूँ
तुम्हारी याद की कोई भी
निशानी न अपने पास,
और न इस धरती पर छोड़ना चाहती हूँ
अलविदा ऐ साथी,
मैं अपने आप को फ़ना करके
इस समस्त कायनात का खात्मा करूँगी
अपने ही भीतर धड़कते हुए
उस वारिस का वजूद मिटाकर,
अपनी ही कोख में उसे दफ़ना कर,
साथ उसके फना हो जाऊँगी। '

आधुनिक परिदृश्य और भगवानदास मोरवाल का कथा साहित्य:-

- प्रॉ. डॉ. बलराम गुप्ता

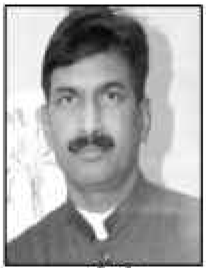

आधुनिक परिदृश्य को कब से स्वीकारा जाए? इस प्रश्न को किस परिप्रेक्ष्य से मूल्यांकित किया जाए? 'आधुनिक परिदृश्य को अंग्रेज़ों के आगमन कालखण्ड से स्वीकारने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारत में आधुनिकीकरण का यही दौर माना जाता है। भारत में 'आधुनिक परिदृश्य' का प्रारम्भिक दौर अंग्रेज़ों के आगमन कालखण्ड से स्वीकारा जाना चाहिए। आधुनिक परिदृश्य शान्तकाल में उठने वाली तरंग के समान है। आधुनिक परिदृश्य नवीनीकरण के रूप में है। मानसिक परिवर्तन प्रभावी जाता है। अस्मिता का अहसास भी प्रमुख होता है। आधुनिक परिदृश्य की सोच ने परिवर्तनों के अनेक दौरों को देखा है। आधुनिक परिदृश्य ने ईश्वर और मानव के प्रति विवेचन करने की सोच को पैदा किया है। धर्मशास्त्रों में मानव को लेकर जो व्याख्या दी गई है, वे सभी कुन्द हो चुकी है। आधुनिक परिदृश्य ने मानव को मानव होने की अनुभूति दी है। भारत के सन्दर्भ में ईश्वर परम्परावादी मनुस्मृति मनोवृत्ति को नेस्तानबूद करने का कार्यभारतीय संविधान मनोवृत्ति तर्क प्रवृत्ति ने भारत को बदला है। इस बदलाव ने भारत को नया कलेवर प्रदान किया है।

उन्नीसवीं सदी से नई यात्रा शुरू करके हिन्दी उपन्यास तमाम परिवर्तनों के बीच से आज जहाँ पहुँचा है, वह एक उद्वेलित करने वाली जगह है। हिन्दी में उपन्यास देर से लिखे जाने शुरू हुए, पर प्रेमचन्द ने इसके पहले महत्वपूर्ण दौर में ही इसे काफ़ी ऊँचाई पर पहुँचा दिया था। उन्होंने ऐसी समस्याएँ उठायी थीं, जो आज भी ताज़ा हैं। उनके साथ और आसपास ही प्रसाद और जैनेन्द्र ने उपन्यास लिखे। इसके बाद अज्ञेय, यशपाल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, अमृत लाल नागर, रेणु, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, श्री लाल शुक्ल जैसे महत्वपूर्ण लेखक हुए, जिनके उपन्यास आज भी विस्मित करते हैं। वे ऐसे समाज में लिख रहे थे जो उच्च विरासत के बावजूद एक अजीब विरोधाभास उपस्थित करते हुए विसंगतियों और क्रूरताओं से भरा पड़ा है। उन्हें अपने बनते हुए राष्ट्र की विडम्बनाओं के अलावा पश्चिमी प्रभावों को लेकर कभी गहरी उद्विग्नता रही है और कभी उन प्रभावों को रचनात्मक संघर्ष का उपकरण बना लेने की संचेत तत्परता। पिछले लगभग ढाई दशकों से इन चीज़ों को पीछे छोड़ते हुए एक नया परिदृश्य है। अब स्थान और काल ही महत्वपूर्ण नहीं है, सामुदायिक परिवेश का एक तीसरा आयाम है। 1990 के आसपास से उपन्यास में जो बदलाव आया है, वह इसलिए आयाम की वजह से सम्भव हुआ है। इसने सार्वभौमता और राष्ट्रवाद के मिथ को तोड़ा, क्योंकि ये ढकोसलों से भर गए थे। इसके अलावा नस्ल जातियों, जेंडर और मज़हब की संकीर्णताओं पर आधारित भेदभाव और तमाम किस्म

के प्रभुत्वों को इसने चुनौती दी। अब स्थानीय और सामुदायिक में मानवीय की खोज शुरू हुई, क्योंकि वैश्वीकरण के ज़माने में मानवीय अब अपरिचित स्थानों, वंचितों, भूल करके रखे गए समुदायों या इतिहास की खाली जगहों में ही कहीं बचा है तो बचा है।

हिन्दी उपन्यास कभी महज़ राष्ट्रीय रूपक नहीं था और नाहीं वह कभी महज़ स्थानीय था। उसमें खासकर इधर जो फर्क आया है उसे यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, नई आलोचना या उत्तर औपनिवेशिक सिद्धान्तों की चौखटों में रखकर नहीं समझा जा सकता। फिर भी आज के उपन्यास को समवेशी प्रगतिशील परम्परा के भीतर रखकर देखना होगा, विच्छिन्नता में नहीं। भारत जैसे कथाओं से भरे देश में जहाँ पहाड़, नदियाँ, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी भी कथाओं में डूबे हुए हैं, हिन्दी उपन्यासों का विविधतापूर्ण, सांकेतिक और सोद्देश्य होना स्वाभविक है। निःसन्देह आज हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी उपन्यास द्रुत गति से लिखे जा रहे हैं। उपन्यास ने इकहरे और एक तरफापन को दूर किया है। उपन्यास द्वारा आज विमर्शों को भी प्रस्तुत किया जा रहा है। जीवन बोध का भी विस्तार हुआ है। हिन्दी उपन्यास सीमित से असीमित स्थानों से निकलकर आ रहा है। नए-नए क्षेत्रों से नए रचनाकार नए विषयों को लेकर आ रहे हैं। जैसे काशीनाथ सिंह और विनोद शुक्ल से लेकर मैत्रेयी पुष्पा, संजीव, ओम प्रकाश वाल्मीकि, भगवानदास मोरवाल अनामिका आदि उपन्यासकारों की कई पीढ़ियाँ हैं।

भारत के अतीत का मूल्यांकन करें तो मनुस्मृति मनोवृत्ति वर्चस्वदीन स्वभाव वाले एकांगी प्रभाव से रौंद रहे थे। भारत की अस्सी प्रतिशत जनता मूलनिवासी केवल कर्त्तव्यों के बोझ से दबा ही रहा था। आधुनिक परिदृश्य में ये सभी बातें बदलीं। अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति और जनजाति तथा आदिवासी सहित हाशिए के समाज में परिवर्तन आधुनिक परिदृश्य की देन है। गुलाम की भूमिका से निकलकर राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल हो रहे हैं। एक उदाहरण महत्वपूर्ण हैं संविधान के कारण ही आज़ाद भारत में आज़ाद भारत की प्रथम महिला द्रौपदी मुर्मु राष्ट्रपति बनी हैं। यह आधुनिक परिदृश्य में उत्पन्न जागरूकता का परिणाम है। आज के समय में मनुष्य स्वयं नियन्ता बन चुका है। ईश्वर को अपदस्थ कर चुका है। यह भी सत्य है कि तार्किक सत्य पथ और मानववाद की भावना से बहुजन नर-नारी दूर है। धार्मिक एवं धर्मशास्त्रों के आधार पर अस्मिता को संचालित नहीं किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन ने सभी तरह के समाजों को बदला है। मूल्य और मान्यताओं में भी परिवर्तन आया है।

आधुनिक परिदृश्य के आरम्भ होने व आकार लेने के क्रम में समाज के संचालन में मुख्य भूमिका का निर्वाह करने वाले साहित्यकारों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। भारत के आधुनिक परिदृश्य को भारत के साहित्यकारों के साहित्य के क्रम में देखा जा सकता है। जिस कालखण्ड

में जो विषय मुख्य भूमिका के रूप में अस्तित्वमान होता है, विचारों की नई रोशनी में जगमगाती है। भारत में परिवर्तन की दृष्टि से अंग्रेज़ों का कालखण्ड महत्वपूर्ण है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव पड़ा है। यहाँ तक की भारत में विषमय बुराइयों को दूर करने में पहल करते हुए भी भारतीयों को नई दृष्टि दी। प्रगति के नए-नए आयामों को समाज में प्रस्तुत किया। भारत का बड़ा समाज जो अछूता था वह भी प्रभावित हुआ। अंग्रेज़ों द्वारा समाज में विकास के जो नए स्वरूप लाये गए उससे जो मनुष्य समाज पहले एक-दूसरे से दूरी बनाकर चलता था। वहीं अब एक दूसरे के साथ मिलकर उठने-बैठने लगा। साहित्यकारों ने भी इस बदलते परिदृश्य को महसूस और साहित्य में महत्व देने लगे।

पूर्व की स्थिति को लेकर निरन्तर नई सोच के साथ आगे बढ़ते रहना आधुनिक परिदृश्य की भाव-भंगिमा के रूप में स्वीकारा जा सकता है। प्रत्येक क्षण आधुनिक से आधुनिक होते जाना ही परिवर्तन का मानक है। भारत में इतिहास के संदर्भ में प्राप्त तथ्यों के आधार पर सैन्धव सभ्यता से शुरूआत मानी जा सकती है। सैन्धव सभ्यता से पूर्व सभ्यता से निखरी हुई सभ्यता सैन्धव सभ्यता है। उसी तरह से आधुनिक परिदृश्य के अन्तर्गत भारत में नवीनता का प्रारम्भ अंग्रेज़ों के कालखण्ड से माना जाता है। विश्व स्तर पर भी नवीनता का कालखण्ड अंग्रेज़ों की वर्चस्व स्थिति से माना जाना चाहिए। अंग्रेज़ों की उपस्थिति व नई सोच ने भारत में आधुनिक परिदृश्य को एक आकार प्रदान किया है। इस बदलते वातावरण में प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता उत्पन्न हो रही थी। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और स्वाध्याय युक्त लेखन साहित्यकार द्वारा साहित्य लेखन भी प्रभावित हुआ। साहित्य लेखन के क्षेत्र में भी नवीनता दिखाई दे रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में सशक्त विधा उपन्यास लेखन आज की स्थिति में प्रमुख विधा बन चुकी है। उपन्यास जैसी सशक्त विधा में प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों को साहित्यकार वर्णनात्मक स्तर पर विचारों को प्रस्तुत करता है। उपन्यास विमर्श को भी नया आयाम दे रहा है। उपन्यास केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं रहा अपितु विमर्शों को नया आयाम दे रहा है। उपन्यास में एक के बाद एक नए विषयों को महत्व दिया जाने लगा है। अनवरत यह क्रम जारी है। भारत में उपन्यास का प्रारम्भ सन् 1882 ई० से श्री विजय दास कृत परीक्षा गुरु से माना जाता है। उन्नीसवीं सदी का और सशक्त परिवर्तन का दौर है। इस समय इक्कीसवीं सदी का दौर चल रहा है। बीसवीं सदी का समय हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित अनेक विधाओं के विकास, भाषा में सुधार व समृद्धि तथा उपन्यास का रहा है। इन सबमें सबसे ज़्यादा उपन्यास विधा के विकास के रूप में देखा जा सकता है। इस दौर के साहित्यकारों ने अनेकानेक विषयों को उपन्यास विधा के रूप में स्वीकारा है।

बीसवीं सदी के छठें दशक में कुछ बहुजन समाज के उपन्यासकारों ने भारत के मूलनिवासी समाज को विषय के रूप में स्वीकारा था। छठें दशक के पूर्व प्रेमचन्द ने कथा साहित्य में भारत की बड़ी आबादी जो दबी कुचली थी तथा नारी विषय की प्रवृत्तियों को विषय के रूप में चुना व परिदृश्य को आधुनिक परिदृश्य का रंग देने का कार्य साहित्य द्वारा किया था। प्रेमचन्द जैसे अनेक रचनाकारों ने ऐसे ही लेखन किया। प्रेमचन्द ने पूर्ण विषय के रूप में नारी जगत को चित्रित किया। कहीं दलित समाज से सम्बन्धित विषयों को पूर्ण विषय के रूप में स्वीकारा। आदिवासी समाज से सम्बन्धित विषयों को पूर्ण विषय के रूप में स्वीकारने की अपेक्षा कथा साहित्य में हल्के-फुल्के शब्द चित्रों में प्रस्तुत किया है। इस कालखण्ड के अनेक रचनाकारों ने आदिवासी समाज से जुड़े अनेक चित्रों को हल्के-फुल्के रूप में ही प्रस्तुत किया है। इस कालखण्ड के अनेक रचनाकारों ने आदिवासी समाज से जुड़े अनेक चित्रों को हल्के-फुल्के रूप में ही प्रस्तुत किया है। छठे दशक के बाद से सवर्ण समाज के अनेक रचनाकार परिदृश्य को आधुनिक बनाने और देश को नई सोच से ओतप्रोत करने का कार्य करने लगे थे। आधुनिक परिदृश्य का तात्पर्य केवल देश की बड़ी आबादी बहुजन, दलित, आदिवासी और नारी जगत का चित्रण करने से ही नहीं अपितु इस समाज की सोच से आधुनिक परिदृश्य को मापा जा सकता है। आधुनिक परिदृश्य का तात्पर्य है बदलाव।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी उपन्यास लेखक का आरम्भ व स्वीकृति श्री निवासन कृत परीक्षा गुरू (1882 ई०) से माना जाता है। सन् 1936 ई० में प्रेमचन्द की मृत्यु हो जाती है। सन् 1882 ई० से लेकर सन् 1936 ई० के बीच की अवधि में जासूसी, इन्द्रजालि रहस्य रोमांच के दौर के साथ अनेकानेक उपन्यासकार कुछ हद तक सामाजिक पहलुओं पर भी लेखन कर रहे थे। प्रेमचन्द साहित्य द्वारा आधुनिक परिदृश्य को सोच के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह बात मैं कई बार कह चुका हूँ। सन् 1936 ई० के बाद से लेकर सन् 1947 ई० तक की अवधि में भारत का परिदृश्य बहुत कुछ बदल रहा था। सन् 1947 ई० में भारत को आज़ादी प्राप्त होती है। सन् 1947 ई० से लेकर भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1950 ई० में लागू होने तक की अवधि में भारत का परिदृश्य आधुनिक परिवर्तन से समृद्ध हो रहा था। सन् 1950 ई से लेकर सन् 1970 ई० तक अवधि में परिवर्तन का प्रारम्भिक दौर आज़ाद भारत के लिए महत्वपूर्ण है। आज़ाद भारत में महत्वपूर्ण भूमिका आधुनिक परिदृश्य को आधुनिक बनाने में भारतीय संविधान की महती भूमिका रही है। देश की सोच को बदलने का कार्य भारतीय संविधान का विशेषकर हाथ है। सन् 1970 ई० से लेकर सन् 1990 ई० तक की अवधि और सन् 1990 ई० से लेकर सन् 2000 ई० तक की अवधि में पाश्चात्य सोच के प्रभाव से आधुनिकतम परिदृश्य के लक्षण भारत में पनपने लगे। तकनीक और विज्ञान का विशेष हाथ है। सन् 2000 ई० लेकर सन् 2030 ई० तक

की अवधि में निरन्तर नई सोच के बढ़ते प्रभाव को देखा जा सकता है। संविधान ने भारत की बड़ी आबादी को भारतीयता के कलेवर में रंगा। संविधान ने इस बड़ी आज़ादी को भारत का हिस्सा माना और भारत को एक भारत के रंग में रंगा। यह सही है कि देश की बड़ी आबादी को मुख्यधारा से अलग कर आधुनिक परिदृश्य की कल्पना नहीं की जा सकी है। भारत का प्रमुख साहित्य भारतीय संविधान की छाँह में अनेकानेक रचनाकारों की रचनाओं में विविध विषयों का प्रभाव रहा है। हिन्दी साहित्य और भारतीय साहित्य दलित साहित्य में भारतीय संविधान की सोच का कहीं हल्के व प्रखर रूप में साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। विशेषकर बहुजन समाज के रचनाकारों की रचनाओं में परिदृश्य के बदलते व्यापक स्वरूप को देखा जा सकता है। इस स्थिति को मानववाद की भूमिका में देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के रचनाकारों ने भी परिदृश्य को बदलने का कार्य किया किन्तु मनोरंजन की प्रधान भूमिका रही है। सवर्ण रचनाकारों ने भी आधुनिक मानववादी परिदृश्य को पहचान कर साहित्य सृजन का कार्य किया है। बहुजन समाजधारा के रचनाकार विशेषकर हिन्दी साहित्य की धारा को आधुनिक मानववादी परिदृश्य के साथ बदल रहे हैं।

आज का युग वैश्वीकरण का युग है। वैश्वीकरण के दौर में कोई भी तत्व अधूरा नहीं रहा है। सबसे ज़्यादा अस्मिता की चेतना का साहित्यिक विमर्श पर प्रभाव पड़ा है। वैश्वीकरण के युग में राजनीति छोटे बड़े स्तर पर चलायमान है। कैसा भी विमर्श हो, राजनीति के सहयोग से मुखर हो जाता है। हिन्दी साहित्य में आन्दोलन और विमर्श इन दो शब्दों का प्रयोग विशेषकर हो रहा है। आन्दोलन और विमर्श कुछ आगे-पीछे के समय से साथ चलते आ रहे हैं। पहले आन्दोलन शब्द हिन्दी साहित्य में जड़ जमाये हुए था। अब विमर्श शब्द अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ स्थापित होते हुए जड़ जमा चुका है। समय के साथ-साथ ही छोटे-बड़े क्षेत्र से आने वाले रचनाकार क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी विमर्शपरक लेखन को महत्व देने लगे हैं। कहने का तात्पर्य है की डेढ़ सौ सालों में भारत के समाज में और भारत के साहित्य में इस विशेषता को महसूस किया जा सकता है। भारत को आज़ाद हुए पचहत्तर वर्ष हो चुके हैं। छोटी से छोटी बातों को विमर्शपरक चेतना के साथ प्रस्तुत करने की हुनर आज के रचनाकारों को आ चुका है। उदाहरण के तौर पर केवल हाशिए के विमर्श को स्वीकारें तो हिन्दी साहित्य में बहुत सारा साहित्य लिखा जा चुका है और यह सिलसिला आज भी जारी है। हाशिये के विमर्श के तहत हिन्दी में अच्छा साहित्य आया है। इसने फिर यह सम्भव किया है कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध मज़बूत हो साहित्यिक पत्रिकाओं में ही विमर्शों की धूम नहीं रही है. एकेडेमिक संसार में भी स्त्री, दलित, आदिवासी, स्थानीय संस्कृति और छोटी भाषाओं के अध्ययन केन्द्र खुलने लगे हैं। इन विमर्शो ने साहित्य के अध्ययन में नए सामाजिक पक्ष जोड़े हैं

और एक नई जान पैदा की है। इन विमर्शों ने नए सामाजिक वर्गों और क्षेत्रों से हिन्दी के नए लेखक और पाठक दिये हैं, जो विमर्श-आधारित साहित्य से मानवीय आत्म सम्मान के साथ जीने की प्रेरणा पाते हैं। सामुदायिक विमर्श साहित्य तक सीमित मामले नहीं हैं। इन नए उभारों ने वंचित और अवहेलित समुदायों को जगाया है, उन्हें मुखर किया है। इनकी वजह से स्त्रियों की आपस में ज़्यादा निकटता आयी है, दलितों की आपस में ज़्यादा निकटता आयी है। उनमें मुक्ति की बेचैनी पैदा हुई है। वे दबे दबे और घुटन के शिकार नहीं हैं, मुखर हैं। इसके अलावा विमर्शों ने राष्ट्रीय राजनीति की संवदेनहीनता खत्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अब हर मौके पर स्त्री और दलित की ज़रूरत पड़ रही है, जनजातियों के लोग ढूंढे जा रहे हैं। मीडिया को भी ये चीज़ें चाहिए।

समाज की सच्चाई यह भी है कि इन डेढ़ सौ सालों में खासकर स्त्रियों, दलितों और स्थानीय लोगों के जीवन में काफ़ी फर्क आया। शिक्षा, राष्ट्रीय आन्दोलन और विभिन्न जन आन्दोलनों की वजह से सामाजिक गतिशीलता आयी। समाज पुरानी दमनात्मक दशाओं में नहीं है। समाज सामान्यतः पहले से अध-खुला जागरूक और संवेदनशील है। लोग आमतौर पर शान्तिप्रिय हैं। भारत के अपने जो महान राष्ट्रीय आदर्श है, उन्हें कमज़ोर किया जा रहा हो, पर वे मिटे नहीं है। हम कहना चाहते हैं कि हमारे देश में जिन नौजवानों ने तोड़ी जाति, धर्म का बंधक तोड़ा, जातीय समुदाय के बाहर प्रेम किया, उन्मुक्त बन्धुत्व बनाया, उन्होंने इतिहास से बेईमानी नहीं की। देश के विभिन्न समुदायों ने मिलकर देश के शहर में जो एक व्यापक समाज बनाया है, वह थोड़ा स्तब्ध है पर हारकर बैठ नहीं गया है। अभी भी लाखों परिवार अन्तर्जातीय विवाहों से बन रहे हैं। सामुदायिक टकराहटों के बावजूद अन्तर्मिश्रण एक यथार्थ है। यह मानना होगा कि वैश्वीकरण ने सामुदायिक अन्तर्मिश्रण बढ़ाने में योग दिया है। इस बाज़ार में सभी उपभोक्ता हैं। इसका एक अर्थ, पहचान में व्यापकता' आयी है। ऐसे दौर में विमर्शों में स्पेस की ज़रूरत बढ़ी है। अब कोई बिन्दुओं पर स्त्री के लिए दलित आउट साइडर नहीं है। दलित के लिए स्त्री आउट साइडर नहीं है, मराठियों के लिए हिन्दी भाषी आउट साइडर नहीं है। इसका अर्थ है, 'दूसरे के सच को समझने की ज़रूरत बढ़ी है, खासकर जब वह आपस में टकराते यथार्थों का समय है। साहित्यकारों की पैनी नज़र से कोई भी विमर्श अछूता नहीं रह पा रहा है। स्वांत: सुखाय की मनोवृत्ति के स्थान पर सामाजिक सामूहिक भावना को ध्यान में रखकर लिखने लगा है। विमर्शपरक लेखन कभी स्वांतः सुखाय लेखन नहीं होता है। विशेषकर चेतना समय का व्यक्ति दूसरे के सच को समझना चाहता है। साहित्य ही महत्वपूर्ण साधन है दूसरे के सच को जानने के लिए साहित्य सम्भावनाओं का द्वार है।

हिन्दी साहित्य के लेखकों द्वारा एक तरफ सीमित परिधि में रहते हुए लेखन किया जा रहा था वहीं हिन्दी दलित साहित्य के लेखक अपने अस्तित्त्व और संघर्ष को सामने रखकर लेखन कर रहे थे। हिन्दी साहित्य लेखकों द्वारा स्त्री और आदिवासी अस्तित्त्व के प्रति लेखन न्यूनस्तर पर किया जा रहा था। दो एक लेखकों को छोड़ दें तो शेष लेखकों का लेखन क्षेत्र भिन्न था। हिन्दी साहित्य दलित लेखकों द्वारा ठोस लेखन किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य लेखकों के लेखन से चेतना और विमर्श का प्रसार व्यापक स्तर पर हो रहा है। इक्कीसवीं सदी के कालखण्ड में लेखन उपन्यास विधा के माध्यम से बड़े पैमाने पर हो रहा है। इक्कीसवीं सदी और अस्सी- नब्बे के दशक में बहुजन समाज के अधिकांश लेखकों ने हाशिये का समाज, दलित, दलित स्त्री, आदिवासी समाज के विविध स्वरूपों पर लिखा जा रहा है। विमर्श के स्तर पर लिखा जा रहा है संजीव, रणेन्द्र, भगवानदास मोरवाल, रमणिका गुप्ता, वीर भारत तलवार, हरेराम मीणा। ऐसे अनेक बहुजन समाज के हिन्दी रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य के कैनवास की परिधि को बढ़ाया है। आज के दौर में हिन्दी साहित्य के फलक पर अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को विस्तृत करने वाले भगवानदास मोरवाल का नाम प्रमुख रूप से लिया जाने लगा है। उक्त रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य के पाठकों को अनेक तरह से नए नए विषयों से परिचित कराया है।

भगवानदास मोरवाल एक छोटे से क्षेत्र मेवात क्षेत्र में आते हैं। इनके साहित्य में मेवात क्षेत्र की जानकारी, संस्कृति, हाशिये के समाज धार्मिक चेतना जैसे अनेक पक्षों को देखा जा सकता है। मैं पहले भी आधुनिक परिदृश्य के बारे में कह चुका हूँ। ऐसी वे सभी बातें जो अभी तक प्रकाश में नहीं आती थीं, अब प्रकाश में आने लगी हैं। प्रकाश में आने के बाद मुख्यधारा के आधुनिक परिदृश्य से कदमताल करने लगती है। मोरवाल का साहित्य इसका प्रमाण है। मोरवाल कृत पहला उपन्यास 'काला पहाड़' (1999) में प्रकाशित हुआ। 'काला पहाड़' उपन्यास में मेव समुदाय की विशिष्टता का उद्घाटन है। यह उपन्यास छोटे-छोटे इतिहासों की खोज को हिस्से के रूप में देखा जा सकता है। यह उपन्यास झूठी आधुनिकता के कलेवर को उतारती है। नए परिदृश्य की ओर संकेत करती हैं। इस उपन्यास को राष्ट्रीय रूपक कथा के रूप में देखा सकता है। मेवात समुदाय साझी संस्कृति में जीते चले आ रहे हैं। भगवानदास मोरवाल ने ऐसे अनेक उपन्यासों में किसी न किसी परिदृश्य को विमर्श के स्तर पर विषय के रूप में प्रस्तुत किया है ।

'काला पहाड़' उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् भगवानदास मोरवाल के अनेक उपन्यास 2021 तक प्रकाशित हो चुके हैं। 'बाबुल तेरे देश में' (2004) में प्रकाशित उपन्यास में मूलतः मुस्लिम संस्कृति, समाज और चेतना के स्तर को चित्रित किया है। विशेषकर मेवात क्षेत्र से मोरवाल के उपन्यासों में मेवात क्षेत्र कभी-कभी मुख्य नायक के रूप में सामने आता है। 'रेत' (2008) में

प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भारत में भारत की जरायम पेशा, वेश्यावृत्ति के लिए विख्यात स्त्री के पहलुओं को दर्शाया गया है। कंजर जनजाति के छिपे रहस्यों को उभारने और रूक्मिणी पात्र द्वारा आधुनिक परिदृश्य को जीवन्त होते हुए उपन्यासकार ने दिखाया है। संविधान के महत्त्व को उजागर किया है। स्त्री सशक्तिकरण का प्रमुख उदाहरण है। यह समाज अपनी रीति-रिवाजों के साथ प्रस्तुत हुआ है। उपन्यासकार ने रूक्मिणी के प्रतिनिधित्व रूप में स्त्री चेतना का स्वर पिछड़ी जनजातियों में संघर्षशीलता और सामाजिक राजनैतिक सवालों को एक विजन के तहत मुखर किया है। 'रेत' के पश्चात् मोरवाल एक नए परिदृश्य को लेकर 'नरक मसीहा' (2004) उपन्यास को लेकर आते हैं। आधुनिक शहरों में एन०जी०ओ० की मक्कारी मनोवृत्ति को बहुत ही सहज ढंग से दर्शाया है। समाज को धोखा देना, सरकार को धोखा देना इस प्रवृत्ति को अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने स्त्री अध्ययन, संस्थान, ग्रासरूट फाउण्डेशन, अम्बेडकर दलित महिला उद्धार सभा सर्वहारा फाउण्डेशन, राहत फाउण्डेशन जे अनेक भिन्न-भिन्न नागरिक संगठनों की कार्य प्रवृत्ति को दर्शाया है। ऐसे अनेक एन.जी.ओ. गरीबों, स्त्रियों और दलितों के नाम पर उनका भला करने के नाम पर बड़े-बड़े देश-विदेश के संगठनों फोर्ड फाउण्डेशन, मेक आर्थर फाउण्डेशन के साथ सरकारों से भी अनुदान लेते हैं। बहुत बड़ा हिस्सा हड़पकर मौज की जिंदगी जीते हैं।

यह उपन्यास उत्थान के पायदान पर जीने वाले नागरिक के पतनशील मनोवृत्ति से युक्त, नागरिक समाज का चित्र है। 'हलाला' उपन्यास मुस्लिम स्त्री के मनोविज्ञान के साथ मुस्लिम संस्कृति के साथ प्रकाशित होता है। इस उपन्यास के बाद बंजारन और वंचना उपन्यास का प्रकाश होता है। वंचना एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास भारत की न्यायिक भ्रष्ट व्यवस्था को प्रदर्शित करता है। यह उपन्यास आधुनिक भारत के आधुनिक परिदृश्य जो कि भ्रष्ट हो चुका है को प्रस्तुत करता है। समाज के अन्तिम पायदान पर जीने वालों के लिए भारत की न्यायिक व्यवस्था मानो हिमालय पर चढ़ने से भी बड़ा कार्य है। इसके पश्चात् 'शकुन्तिका' का प्रकाशन है। 'शकुन्तिका' के बाद मुस्लिम समाज व संस्कृति को लेकर 'खानदान' (2020) उपन्यास का प्रकाशन होता है। मतान्तरण के बाद मुस्लिम संस्कृति को अपनाने वाले समाज का इतिहासपरक परिस्थितियों के साथ उपन्यास तथ्य के साथ आगे बढ़ता रहता है। यह उपन्यास भी मेवात क्षेत्र व संस्कृति के मनोभावों को प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

भगवानदास मोरवाल की रचनाधर्मिता की प्रमुख विशेषता है। शोध परक नए-नए विषयों पर लेखन किया जाना इनकी रचनाओं में मेवात संस्कृति, मेवात क्षेत्र की विशेषता की खुशबू

समायी हुई है। 'शुकन्तिका' उपन्यास में मोरवाल जी ने स्त्री शिक्षा और वृद्धावस्था जैसे विषय को उठाया है। समाज में स्त्री शिक्षा के प्रति बदलाव देखा जा रहा है। वृद्धावस्था की समस्या सामान्य परिवेश से हटकर असामान्य परिदृश्यों को उजागर कर रही है। यह आज के समाज की कटु सच्चाई है। 'वंचना' उपन्यास में मोरवाल जी का मूल उद्देश्य न्याय व्यवस्था की संवेदनहीनता नीचे से लेकर ऊपर तक दिखाई देती है। कानून में व्याप्त कमज़ोरियों पर ध्यान दिलाया गया है। जातीय व्यवस्था का न्याय व्यवस्था में कैसी दखल है? इस बात की बानगी 'वंचना' उपन्यास प्रत्यक्ष उदाहरण है। मोरवाल जी हिन्दी साहित्य के भीतर विद्यमान पर्तों को जान चुके हैं। इसी कारण से मोरवाल जी सदैव अपने लेखन के माध्यम से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते रहते हैं। आने वाले समय में हिन्दी साहित्य और हिन्दी दलित साहित्य दोनों क्षेत्र के सशक्त रचनाकार के रूप में उभरकर सामने आएँगे।

- **शिवहर्ष किसान पी०जी० कालेज, बस्ती।**

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. हिन्दी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया शंभुनाथ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-002, संस्क.
2. प्रो 2016 पृ. 89.10 हिन्दी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया - शंभुनाथ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-002, संस्क. 90 2016 0 253, 255

****

साहित्य और समाज का संबंध बहुत पुराना है और उसका संबंध अनादिकाल से चला आ रहा है और दोनों का संबंध मनुष्य से है। मनुष्य समाज में रहने के साथ-साथ समाज को प्रभावित करता है और खुद भी प्रभावित होता है। साहित्यकार समाज का अंग है और समाज की परिस्थिति का प्रभाव उस पर पड़ता है। साहित्यकार समाज को साहित्य में बांधता है और साहित्य से समाज का मार्गदर्शन होता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि साहित्यकार युग दृष्टा और सृष्टा होता है। वह समाज की समस्याओं को देखता, सुनता और समझता है और उसी तरह साहित्य की सृष्टि करता है।

महादेवी वर्मा कृत 'जीवन विरह का जलजात!' के मूल भाव

- विश्वानन्द पतिया

प्रस्तावना

आधुनिक युग की मीरा और छायावादी युग की सुप्रसिद्ध कवयित्री सुश्री महादेवी वर्मा प्रणीत 'जीवन विरह का जलजात' शीर्षक कविता एक अद्भुत कृति है जिसमें विरहानुभूति और रहस्यानुभूति की सशक्ताभिव्यक्ति हुई है। निम्नांकित अनुच्छेदों में विवेच्य काव्य के मूल भाव या विचार प्रस्तुत हैं।

जीवन विरह के 'कमल' के समान

आलोच्य कविता में महादेवी वर्मा ने अपने जीवन को विरह के 'कमल' के सदृश अभिव्यक्त किया है। वे कहती हैं – 'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!' अर्थात् यह जीवन विरह या वियोग के कमल के समान है जो अश्रुपूर्ण है। कमल का जन्म जल में होता है। वह जल में खिलता है और उसकी मृत्यु भी जल में ही हो जाती है। यहाँ पर जल या पानी अश्रु या आँसू का प्रतीक है। महादेवी वर्मा का जीवन भी उसी कमल के समान है जो जल अर्थात् आँसुओं से घिरा हुआ है। जिस प्रकार कमल का फूल पानी या कीचड़ में रहकर भी स्वच्छ और पवित्र रहता है उसी प्रकार महादेवी वर्मा का जीवन भी पवित्र है।

वेदना का सकारात्मक रूप में अंकन

महादेवी वर्मा इस बात की ओर हमारा ध्यानाकृष्ट कराती है कि – 'वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास' अर्थात् उनके विरह या वियोग का जन्म दुखों या कष्टों में हुआ और उन्होंने करुणा को अपना आश्रय बना लिया। जब आत्मा परमात्मा से अलग होती है और उस समय जिस दुख की अनुभूति होती है उसी दुख की अनुभूति महादेवी जी को भी हो रही है। ऐसी स्थिति में उन्होंने करुणा को अपना सम्बल बनाया है और एक प्रकार से बौद्ध-दर्शन को भी अपने जीवन में विशिष्ट स्थान दिया है। उनकी आँखों से जो अश्रु निकल रहे हैं वे इतने कीमती है कि दिन भी उन्हें चुन रहा है और रात भी उनकी गिनती कर रही है । महादेवी जी ने दुख को सकारात्मक रूप में अपनाया है। उनके लिए यह वेदना शक्ति तुल्य है और उन्हें पीड़ा ही प्रिय है।

जीवन में 'अश्रु' की महत्ता

महादेवी वर्मा जी के जीवन में 'अश्रु' का बहुत बड़ा महत्त्व है। उनकी आँखों से निकले ये अश्रु उन्हें अत्यंत प्रिय है। उनके हृदय रूपी ख़ज़ाने में ही ये सारे आँसू संचित हैं। ये आँसू पहले तो उनके नेत्रों में निर्मित होते हैं और तत्पश्चात् हृदय में जाकर एकत्र हो जाते हैं । कहने का यह तात्पर्य है कि जब हमें कष्ट होता है तब हमारी आँखों से आँसू तो निकलते ही हैं परंतु उसी समय हमारा हृदय भी द्रवित होता है। इसीलिए आँसुओं का संचय हृदय में होता है।

इसके अतिरिक्त महादेवी जी यह भी बताती है कि – 'तरल जल-कण से बने घन-सा क्षणिक मृदुगात..' अर्थात् क्षणभंगुर मानव-शरीर जल-कणों से बने बादल के समान है। हमारा शरीर नश्वर है और हम सभी इस धरती पर सीमित समय के लिए जीवित रहते हैं। आकाश में जो बादल होता है वह भी मानव-शरीर के समान क्षणभंगुर ही होता है। बादल जल-कणों से बनता है और जब बादल का पानी धरती पर गिरता है तो उससे सभी लोगों का कल्याण होता है। खेतिहरों के लिए यह वर्षा सोने से कम नहीं।

उसी प्रकार जो आँसू वेदना के रूप में महादेवी जी की आँखों से बह रहे हैं वे समस्त लोक के कल्याण हेतु ही हैं।

विरह में वसंत ऋतु का साथ

वस्तुतः यह महादेवी वर्मा जी की कल्पना-शक्ति का ही परिणाम है कि उन्होंने अपने विरह की तुलना मधुमास अर्थात् वसंत ऋतु से की है। वसंत ऋतु में चारों ओर पराग के कण दिखाई देते हैं जो अश्रु तुल्य होते हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण अवलोकनीय है :

'अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात..।'

इस प्रकार महादेवी वर्मा जी स्वयं यह बताने की चेष्टा कर रही हैं कि जब उनके नेत्रों से आँसू निकलते हैं तब वे आँसू 'अश्रु को बाज़ार' बनकर करुण वर्षा करते हैं। उनके आँसू चाहे विरह या दुख से ही क्यों न उत्पन्न हुए हों परंतु वे करुणा से पूर्ण हैं।

समय द्वारा अश्रु-भेंट

विवेच्य काव्य में 'अश्रु' पर ही चर्चा करते हुए इस बात की ओर पाठकों का ध्यानाकृष्ट किया गया है कि महादेवी वर्मा जी को स्वयं काल ने आँसू भेंट के रूप प्रदान किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात..'

अर्थात् उन्हें अपने जीवन में विरह रूपी आँसू उपहार के रूप में प्राप्त हुए हैं। हवा भी गहरी साँस लेकर मानो महादेवी जी से उनकी व्यथा-कथा पूछ रही है। उनका जीवन सचमुच अश्रूपूरित है।

असीम सत्ता के प्रति पूर्ण समर्पण

कवयित्री उस अज्ञात शक्ति अर्थात् परमेश्वर पर पूर्ण विश्वास करती है और उनके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होकर कहती है –

'जो तुम्हारा हो सके लीला-कमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात...'

इस प्रकार महादेवी जी परमात्मा से यह प्रार्थना कर रही हैं कि अपनी शक्ति से वे उस कमल को खिला दें जैसे प्रातः के समय वे अपनी दिव्य ऊर्जा से प्रकृति में प्राण फूँक देते हैं। महादेवी जी भी यही चाहती हैं कि उसी ऊर्जा से उनका जीवन भी खुशियों से भर जाए। वे अपने अश्रुपूर्ण जीवन में ही असीम आनंद की अनुभूति करें।

निष्कर्षत: उपर्युक्त विचारों के अवलोकनोपरान्त यह प्रमाणित होता है कि आलोच्य कृति में कवयित्री ने अपने जीवन को 'कमल' तुल्य माना है। उन्होंने वेदना को सकारात्मक रूप में ग्रहण किया है और अपने जीवन में 'अश्रु' के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। महादेवी वर्मा जी ने अपने विरह को प्रकृति से भी जोड़ा है और परमेश्वर के प्रति समर्पित होकर अपनी विरहानुभूति को एक नई परिभाषा दी है। वस्तुतः विराहनुभूति में ही उन्हें सात्विक आनंद की प्राप्ति होती है।

कहानी

आत्म-विश्वास

\- बिदवंती शम्भू

'आइए-आइए शहर – सें पिएर – कारचीए मिलितेर ... रौंत्र रौंत्र।' वह पुकारती चली जा रही थी। उसकी आवाज़ में मिठास थी। लगता नहीं था कि वह संत्रास से गुज़री और पली-बड़ी हुई थी। अन्य बस कंडक्टर की तरह गले बैठाकर चिल्लाकर आवाज़ नहीं देती थी। उसे अपने कार्य से प्यार हो गया था। उसे अपने गुरुजी की बात याद आ गई थी और उसने अपने जीवन का मंत्र बना लिया था 'कोई भी काम बड़ा या छोटा नहीं होता। काम को पूजा और कर्त्तव्य समझकर करने में बरकत और प्रगति होती है इसलिए प्यार और श्रद्धा पूर्वक ही कोई भी काम करना चाहिए।' यही वाक्य था जिसने उसे नम्र बनाया था और शायद दूसरे लोग भी विनम्रतापूर्वक उससे बात करते थे और सम्मान भी देते थे।

स्वाभाविक सी बात है कि अब भी लोग दकियानूसी विचारधारा वाले होते हैं जिनको मिनमेक निकालने से कोई नहीं रोक पाता है। उसके बारे में भी कुछ लोग कह ही देते थे कि लड़की होकर यह रेणु बस कंडक्टर का काम करती है, शर्म नहीं आती। दूसरे जोड़ते, काम कम और अपना तमाशा करने ज़्यादा आती है। लड़कों को फाँसने के लिए यह भी एक तरीका है। रेणु उन लोगों की परवाह नहीं करती, उसे पता था कि इस जग में भाँति-भाँति के लोग होते हैं। जैसे बाग में अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे फूल होते हैं, सबके अपने रंग और अपनी सुगंध होती है। अतः उसकी परवाह किए बिना वह अपने कार्य को श्रद्धापूर्वक करती थी। भले ही उसने ग्रेड दस तक की पढ़ाई की थी फिर भी उसमें घमंड बिलकुल नहीं था। वह इतनी सुंदर भी नहीं थी कि लोग उससे छेड़-छाड़ करे। साधारण लिबास यानि पोशाक में रहकर अपनी आदत, सीमा और मुस्कान के साथ काम करती थी। हाँ! कभी-कभार वह तब भड़क जाती जब कॉलेज की छुट्टी वाली बारी मिल जाती क्योंकि उसमें कुछ 'लोरेतो' वाली लड़कियाँ ऐसी छोटी पोशाक पहनकर बस में आती कि उससे देखा नहीं जाता। वे सीट की जगह सीट के ऊपर बैठ जाती। कई तो टाँग फैलाकर गोलाकार में बैठकर कॉड भी खेलती, तरह-तरह के तमाशे करतीं। उस समय वह नाराज़ होती। कई बार तो वह पुलिस स्टेशन भी गई और रेक्टर से भी बात हुई थी। भला यह कोई तरीका है कि लड़कियाँ बस में बैठे तो उनके अंदर के कपड़े सभी को दिखाई दे .. छी। यह भी क्या फैशन है? कक्षा में कैसे बैठती होंगी? क्या शिक्षिका के अलावा शिक्षक भी कक्षा में नहीं आते? वह सोचती कि उसके समय में अनुशासन का घर से शुरू होकर गली, स्कूल और

दुकान और हर जगह पालन होना अनिवार्य था। पर आज पता नहीं कितने प्रकार के नियम बन गए हैं। स्त्रियों-बच्चों के बचाव के नियम जिससे वे सिर पर चढ़ बैठे हैं।

रेणु पूरे रास्ते हर बस स्टॉप पर इसी तरह गाँवों-शहरों के नाम पुकारती जाती और टिकट काटती जाती। कुछ लोग उसकी सराहना करते और कुछ लोग हमेशा की तरह खिल्लियाँ भी उड़ाते। फिर भी रेणु समझ गई थी उसे तो अपना काम करना है और वह चाहती थी कि और पढ़ाई करे। उसने एक नियम बना लिया था कि रविवार को नौकरी नहीं करेगी। वह उस दिन निजी ट्यूइशन लेने जाती थी और भी सप्ताह और रात्रि के समय कई ऑनलाइन कोर्स लिया करती थी। वह अपने काम और पढ़ाई का दिनचर्या बना चुकी थी। रेणु के पिता राजन उसको प्रोत्साहन देते थे लेकिन माँ और भाई राकेश उसको हमेशा हताश करते कभी-कभी तो उसपर व्यंग्य भी कसते कि एक तो बस कंडक्टर और ऊपर से विदुषी बनने चली है। रेणु तो दिमाग में अपना लक्ष्य बना चुकी थी और उसपर अडिग थी। उसके पिता राजन भी कहता 'बेटी रेणु किसी की बात की परवाह मत करना, अच्छे कार्य हो तो तुम आगे बढ़ते ही चलती जाना। तुम्हें अपना रास्ता, अपना जीवन स्वयं बनाना है।' पिता की इन बातों से उसे साहस मिलता था। वह अपनी मंज़िल को ध्यान में रखकर आगे बढ़ती जा रही थी। उसने जी. सी. ई – ए लेवल की तैयारी की और परीक्षा भी दी। उसका सौभाग्य और मेहनत की बदौलत उसे अच्छा फल भी प्राप्त हुआ। वह अब आगे भी पढ़ना चाहती थी। उसका साहस, श्रद्धा और मेहनत देखकर उसके कार्यों में मालिक ने लचीलापन यानि थोड़ी छूट दे रखी थी ताकि परीक्षा और कोर्स के दौरान वह पूरा-पूरा लाभ उठा सके।

उसकी माँ सरिता पहले तो कुछ क्रूर स्वभाव की थी पर धीरे-धीरे बेटी की मेहनत देखकर पिघलने लगी थी। पहले से अपने बेटे राकेश पर ही केवल जान छिड़का करती थी पर अब थोड़ा ध्यान रेणु पर भी देने लगी थी। राजन थोड़ा छरमत स्वभाव का था कभी अच्छा तो कभी जब शराब पी ले तो राक्षस ही बन जाता था। न पिए तो वह साधु स्वभाव का बन जाए और चंचलता उसकी नस-नस में बसी हुई थी।

राकेश को सारी सुविधाएँ दी जाती थीं। इसलिए वह आगे बढ़ता चला गया और जल्दी अपनी डिग्री प्राप्त कर नौकरी पर भी बैठ गया। अब तो उसे और भी रेणु को चिढ़ाने का मौका मिल गया। माँ भी अपने बेटे को सोने का लड्डू कहती और हर बात में हाँ में हाँ मिलाती चली जाती। 'माँ रेणु से घर पर रहने को क्यों नहीं कहती। लोग उसकी बातें करते हैं। मुझसे कहते हैं तुम्हारी बहन बस कंडक्टर है । तरह-तरह की बातें करते हैं।' राकेश ने माँ का कान भरा।

'हाँ बेटा राकेश। मैंने भी तो कई बार कहा कि यह काम छोड़ दो, लोग हँसी-मज़ाक उड़ाते हैं। शादी करने के लिए लड़का नहीं मिलेगा पर वह जिद्दी है मानती ही नहीं। वह तो अपनी मर्ज़ी की मालकिन बन चुकी है।'
'पता नहीं उसके कारण मुझे भी लड़की मिलने में कठिनाई होगी शायद।'
'ऐसा मत सोचो। तुम तो लड़के हो। लड़कियों को चुनना तो तुम्हारा हक है। तुम्हें जो अच्छा लगे उसे पटा लो न चाहो तो ठुकड़ा दो।'
'ठीक कहती हो माँ!'
माँ-बेटे के बीच खूब बनता था। वे हमेशा पिता राजन और रेणु की हँसी उड़ाते रहते थे। लेकिन राजन भले ही शराबी, चंचल कुछ भी हो, अपनी बेटी रेणु को साहस देते रहते। एक रोज़ रेणु ने अपनी माँ से कहा था – 'माँ मैं वकालत का कोर्स लूँगी। वकील बनना चाहती हूँ।'
'अरी रेणु तुमने अपना मुँह देखा है, अपनी औकात देखी है!', व्यंग्य करती हुई तीर बरसाई।
'ह चलो अब बस कंडक्टर भी वकील बनने लगी। वाह! रे कलियुग!' राकेश ने भी उसे निराश किया।
'क्यों नहीं! क्यों नहीं बन सकती? कहाँ लिखा गया है कि साधारण आदमी आगे बढ़ और पढ़ नहीं सकता? क्या कहते हैं बिलगेट, अलिबाबा का मालिक आदि वे गैरे वगैरे लोग रेणु ही की तरह थे, आज कहाँ से कहाँ तक पहुँच गए हैं। रेणु क्यों नहीं पढ़ सकती, पढ़ो बेटी, मैं तुम्हारे साथ हूँ।'
पिता की बात सुनकर रेणु में एक और जोश आ गया और उसने सोच लिया कि मैं वकील बनूँगी। उसने दिन दूनी रात चौगुनी मेहनत की। वह ऑनलाइन के साथ बड़े-बड़े वकीलों की सलाह और सीख प्राप्त करने लगी।

उधर राकेश एक अच्छी नौकरी 'वैल्यूऐशन ऑफिसर' की नौकरी पर बैठ गया। वेतन भी अच्छा मिलता था। भगवान ने भी शायद सहायता की जिससे उसे नौकरी स्थल पर एक लड़की भी मिल गई। करुणा स्वभाव की अच्छी थी। जब राकेश ने रेणु पर व्यंग्य कसते हुए हँसी उड़ाई थी तो उसने कहा था – 'ऐसा क्यों कहते हो ? वह मेहनत कर रही है । उसे तो प्रोत्साहित करना चाहिए। तुम क्यों नकारात्मक ढंग से सोचते हो?'
करुणा की बात सुनकर वह चुप हो गया था। राकेश सोच रहा था कि वह लड़की है इसलिए लड़की की तरह सोचती है। इसपर बहस नहीं करना चाहता । समय के चलते उसने शादी की और आराम से गृहस्थ जीवन बिताने लगा। अपनी बहन रेणु की सहायता करने से राकेश का रूह काँपता था लेकिन करुणा उसके विपरीत थी। वह रेणु की सहायता करना चाहती थी। अपने

कपड़े-जूते शृंगार की चीज़ें यहाँ तक कि यह भी कहती थी कि 'यदि कुछ पैसों की आवश्यकता पड़े तो कभी हिचकिचाना नहीं। बस मुझे संकेत कर देना।'

रेणु को लगता था कि करुणा जैसी भाभी हो तो जीवन में प्रोत्साहन मिलता रहेगा। वह लड़की की भावनाओं को समझती है। पता नहीं कैसे माँ-माँ होकर क्यों निराश करती है और भाभी-भाभी होकर प्रोत्साहित करती है। हे भगवान! आपकी लीला कैसी है समझ में नहीं आती!

आखिरकार रेणु का परिश्रम रंग लाया। रात देर तक वह पढ़ती रही। सहेलियों एवं लेक्चररों की सहायता से वह परीक्षा दे पाई। उसे अपने-आप पर विश्वास था मगर परीक्षा तो परीक्षा होती है, कभी जो पढ़ते हैं वह प्रश्न-पत्र पर नहीं आता लेकिन रेणु की किस्मत अच्छी थी। शायद सच ही कहा गया है जो अपनी सहायता करता है उसकी मदद भगवान भी करता है। रेणु ने बहुत अच्छी तरह से काम किया। सारे प्रश्नों का उत्तर अच्छा ही दिया। परीक्षा भवन से निकलने के बाद उसे संतुष्टि भी हुई। उसने भगवान से प्रार्थना की थी कि उसे सफल करवा दे ताकि कोई यह न कहे कि छोटे काम करने वाले पढ़ नहीं सकते या उसे अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती। ऐसा लग रहा था कि उसने सारी गरीब और कमज़ोर लड़कियों का प्रतिनिधित्व किया है।

अंधा क्या चाहे दो आँखें! रेणु का परीक्षाफल आया और वह सफल हो गई। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसकी भाभी उसके लिए बहुत प्रसन्न हुई। राकेश क्या करता, उसे अपनी बहन की सफलता पर खुशी बतानी ही पड़ी। हमेशा से उसने अपनी बहन का मज़ाक उड़ाया था। माँ भी अपने बेटे को बढ़ावा तो देती थी साथ में वह भी रेणु को हर बार निराश करती थी। एक उसका पिता ही था जिसने बुरे होते हुए भी अपनी बेटी को प्रोत्साहित किया। अब रेणु ने वकालत की परीक्षा में सफलता पा ली थी और इंटर्नशिप के लिए प्रशिक्षण लेने लगी थी। रेणु ने अपनी कंपनी, सहपाठी भाभी और एक या दूसरे रूप में जिसने भी सहायता की उसके प्रति आभार प्रकट किया।

उसकी सफलता पर पूरे गाँव को गर्व था। एक मामूली सी बस कंडक्टर वकील बनकर सारी लड़कियों की प्रेरणास्रोत बनी। कभी किसी को हीन भावना से नहीं देखना चाहिए।

यात्रा-वृतांत

थाईलैंड में समुद्र मंथन

- गोवर्धन यादव

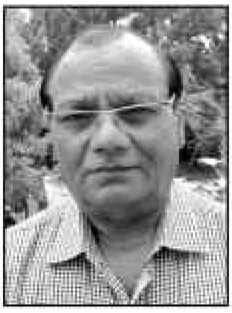

समुद्र मंथन की कहानी मुझे बचपन में माँ ने कह सुनायी थी। उनके कहने का ढंग बड़ा रोचक होता था। जो भी वे बतलाती जातीं,उसका काल्पनिक चित्र आँखों के सामने सजीव हो उठता था। उस कहानी में एक समुद्र था जिसका ओर-छोर दिखाई नहीं देता था, मथानी के रूप में मन्दरांचल पर्वत को उपयोग में लाया गया था और उस पर्वत से वासुकी नाग को नेति की तरह लपेटकर खींचा गया था। मंथन से चौदह रत्न निकले थे जिसे देव और दानवों के मध्य बांट दिया गया था। बाद में किसी फ़िल्म में इसे रूपायित होते हुए देखने को मिला था।

अपनी उम्र के सढ़सठवें (67) पड़ाव पर मुझे तृतीय अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में एक प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अपनी यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर वहाँ से लौटते हुए थाईलैंड के हवाई अड्डे पर जिसका नाम संस्कृत में **"सुवर्ण भूमि"** रखा गया है, पर करीब बावन फ़ीट लंबी, तथा पंद्रह फ़ीट ऊँची प्रतिमा जो समुद्र मंथन को लेकर बनाई गई है, देखने को मिली। उसे देखते हुए मुझे आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि समुद्र मंथन की कहानी जो भारतीय मनीषा को लेकर लिखी गई थी, विदेशी धरती पर देखने को मिल रही है। इतिहास को खंगालने पर ज्ञात हुआ कि कभी भारत की सीमाएँ ईरान, अफ़गान, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड जिसे श्यामभूमि के नाम से जाना जाता था, तक फ़ैली हुई थी। फ़िर व्यापार अथवा नौकरी करने के लिए जो भारतीय यहाँ पहुँचे, उन्होंने अपनी सांस्कृतिक पहचान को स्थायी रूप देने के लिए इस प्रतिमा की स्थापना करवाई।

उस आदमकद प्रतिमा को देखते हुए मुझे चार लाइनें याद हो आई जिसमें समुद्र मंथन से प्राप्त हुए उन चौदह रत्नों की व्याख्या की गई है, वे इस प्रकार है।

श्री,/ मणि/,रंभा/,वारुणि/ अमीय/, शंख,/गजराज/धनवन्तरि/
धन/ ,धेनु,/शशि/,हलाहल,/ बाज"/कल्पवृक्ष

समुद्र मंथन में सबसे पहले "हलाहल"(ज़हर) निकला, जिसे न तो देव ग्रहण करना चाहते थे और न ही दानव। असमंजस की स्थिति देख, देवों के देव महादेव ने उसे स्वीकार करते हुए अपने कंठ में धारण कर लिया। ज़हर के गले में उतरते ही उनका कंठ नीला पड़ गया। इस तरह इनका एक नाम "नीलकंठ" पड़ा । दूसरे क्रम में"कामधेनु" गाय निकली, जिसे ऋषियों ने ले

ली। तीसरे क्रम में "उच्चैश्रैवा" नामक घोड़ा निकला, जिसे दानवों के राजा बलि ने रख लिया। चौथे क्रम पर " ऐरावत" हाथी निकला, जिसे इंद्र ने अपने काननवन में भेज दिया। पांचवें क्रम में "कौस्तुभमणि" मणि निकला, जिसे भगवान विष्णु ने ग्रहण कर लिया। फ़िर छटे क्रम पर कल्पवृक्ष´ निकला, जिसे इंद्र ने अपने उद्यान में रोप दिया। इसके बाद "रंभा" नामक अप्सरा निकली, जिसे इंद्र ने अपने दरबार में भेज दिया। इसके बाद "लक्ष्मी" का प्राकट्य हुआ जिसे भगवान विष्णु ने अपनी भार्या बना ली। इसके बाद "वारुणि" (शराब)निकली, जिसे दानवों ने अपने कब्ज़े में कर लिया। इसके बाद "चन्द्रमा" जिसे देवों के देव महादेव ने अपनी जटा में धारण कर लिया। फ़िर" पारिजात" नामक एक वृक्ष निकला, जिसे पुनः इंद्र ने अपने काननवन में लगा दिया। इसके बाद "शंख" निकला, जिसे विष्णु ने अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद " धन्वन्तरि" नामक वैद्य निकले, जो देवों के चिकित्सक बने। सबसे अंत में " अमृत" निकला। अमृत के निकलते ही देव और दानवों में संग्राम छिड़ गया क्योंकि दोनों ही पक्ष इसे पीकर अमर हो जाना चाहते थे। जब मामला शांत होता दिखायी नहीं दिया तो भगवान विष्णु ने "मोहिनी" का रूप धारण कर, प्राप्त अमृत को एक बड़े पात्र में भर कर देव और दानवों से कहा कि वे पंक्तिबद्ध होकर बैठ जाएँ, सभी को बारी-बारी से अमृतपान करवाया जाएगा। भगवान विष्णु जानते थे कि अगर अमृत दानवों को पिला दिया गया तो वे अमर हो जाएँगे और देवों को परेशान करते रहेंगे। अतः चालाकी से उन्होंने उस पात्र को दो हिस्सों में बांट दिया। एक में अमृत और दूसरे में मदिरा भर दी गई। जब देवों को अमृत पिलाते तो अमृत भरा हिस्सा देवों की तरफ़ कर देते। जब दानवों की बारी आती तो उसे पलट देते थे। दानव जानते थे कि विष्णु देवताओं का पक्ष लेकर उनके साथ छलावा करते रहे हैं। अतः एक दानव देवता का रूप धारण कर उस पंक्ति में जा बैठा जहाँ देवगण बैठे हुए थे। विष्णु ने उसे देव समझकर जैसे ही अमृत के पात्र को उड़ेला, पास बैठे सूर्य और चन्द्रमा ने श्री विष्णु से शिकायत कर दी। पता लगते ही विष्णु ने अपने चक्र से उसकी गर्दन उड़ा दी। तब तक तो काफ़ी देर हो चुकी थी। अमृत की कुछ बूंदें गले से नीचे उतर चुकी थीं। गर्दन कटने के बाद भी वह दानव अमृत के प्रभाव से मर नहीं सका। दो टुकड़ों में बंटे दानव का एक हिस्सा राहू और दूसरा केतु कहलाया। हिन्दू मान्यता के अनुसार राहू और केतु बारी-बारी से सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसते हैं। इसी के कारण सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण होता है, जैसी बातों को बल मिलता है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार ऋषि दुर्वासा के श्राप से सभी देवगण अपने राजा इंद्र सहित बलहीन हो गए थे। उस समय दानवों का राजा बलि हुआ करता था। शुक्राचार्य दानवों के गुरु थे। वे जब-तब राजा बलि को इंद्र के खिलाफ़ बरगलाते थे और वे देवों पर आक्रमण कर उनकी संपत्ति पर अपना अधिकार जमा लेते थे। घर से बेघर हुए देवताओं ने अपने राजा इंद्र को अपनी व्यथा-कथा कह सुनायी,पर वह तो स्वयं निस्तेज था, मदद नहीं कर पाया। इस तरह सभी

देवताओं ने ब्रह्मा को अपना दुखड़ा कह सुनाया। ब्रह्मा ने उन्हें श्री विष्णु के पास भिजवाया। विष्णु ने सारी बातें सुन चुकने के बाद समुद्र मंथन की योजना बनाई। वे जानते थे कि दानवों को बलहीन करने के लिए शक्ति चाहिए और वह समुद्रमंथन के ज़रिए ही हासिल की जा सकती है। उन्हीं की योजना के अनुसार उन्होंने वासुकि नाग को नेति, मन्दराचल पर्वत को मथानी और स्वयं कच्छप बनकर मथानी का आधार बनने का आश्वासन दिया। इस तरह समुद्र मंथन का अभियान चलाया गया और वहाँ से प्राप्त शक्तियों को अपने अधिकार में लेते हुए उन्होंने दानवों को फ़िर एक बार पाताल की ओर लौटने पर मजबूर कर दिया था।

थाईलैंड में बुद्ध धर्म अपने शिखर पर है। सभी बौद्ध मंदिरों में आपको भगवान बुद्ध की सोने से पालिश की गई भव्य प्रतिमाएँ देखने को मिलती है। इसके साथ ही वहाँ हिन्दू धर्म का भी अच्छा खासा प्रभाव देखने को मिलता है। वहाँ एक से बढ़कर एक हिन्दू देवी-देवताओं के मंदिर हैं, धर्म के नाम पर यहाँ झगड़ा-फ़साद कभी नहीं होता और न ही कोई किसी पर ज़बरदस्ती अपना प्रभाव ही डालता है। हिन्दू-बौद्ध और मुस्लिम सभी पक्ष के लोग यहाँ बड़े ही सौहार्द्रता के साथ अपना जीवन बसर करते हैं।

****

अधिकार

- डॉ बीरसेन जगासिंह

बाँधकर समय की सीमा में
खड़ा किया है भविष्य ने तुमको
और मात्र प्रश्न पूछा है, कि जीव न पर्यंत तोड़ी है
रोटी तुमने हिन्दी की, पाला है बाल बच्चों को
बुद्धिजीवी की पोशाक पहनकर,
उठकर गए बीते निरीहों से
मान समाज में पाया है, फिर भी धोखा किया है,
इस भाषा से और आज, तुम्हारे बच्चों को आती नहीं
हिन्दी सिवाय 'नमस्ते' के
"हिन्दी का उद्धार करना है!"
किसने फिर दिया अधिकार तुमको
हिन्दी के नाम पर बोलने का?

निबंध

दीपावली

- डॉ लक्ष्मी झमन

दीपावली कार्तिक महीने की अमावस्या की रात्रि में लक्ष्मी देवी की पूजा में प्रकाश की जगमगाती किरण माला के अर्थ को परंपरा से देता आ रहा एक उल्लास भरा पर्व है। 'लक्ष्म' का अर्थ है चिन्ह, जीवन को चिन्हित करनेवाली लक्ष्मी है, लक्ष्मी जीवन का चिन्ह है । लक्ष्मी शक्तिरूपा है । जहाँ शक्ति नहीं वहाँ प्रकाश नहीं, वहाँ जीवन नहीं । दीपावली की रात्रि को लक्ष्मी, कुबेर एवं गणपति की पूजा का विशेष महत्त्व है ।

दीपावली पर मन के भेद, अहंकार, बैर को दीपक की लौ में जला देना चाहिए । किसी भी त्योहार को मनाने का सही अर्थ यही है कि सबसे पहले तो घर से दरिद्रता दूर की जाए ताकि सुख सौभाग्य के क्षण आएँ और दीपावली तो है ही हर्षोल्लास का त्योहार ।

दीपावली भारतीय संस्कृति का प्रमुख त्योहार है तथा यह वर्ष का सबसे सौभाग्यशाली दिन होता है। इस पर्व पर आमतौर से माता लक्ष्मी और भगवान गणेश की पूजा होती है । भगवान गणेश बुद्धि के देवता है और माता लक्ष्मी संपदा की देवी । संपत्ति की अपेक्षा व्यक्ति को बुद्धिमान होना चाहिए, साथ ही न्याय-नीतिवान मनुष्य के लिए यही उचित है कि धन का उपार्जन न्याय-नीति के आधार पर हो और उसका उपयोग करने में भी विवेकशीलता से काम लिया जाए । यह ध्यान रखने वाली बात है कि यदि अनीतिपूर्ण उपार्जन हो या पैसों का सही खर्च न किया जाए, तो माता लक्ष्मी की प्रसन्नता का लाभ न मिल सकेगा । इतना ही नहीं, धन के दुरुपयोग से उलटा अनर्थ ही होता है ।

दीपावली का त्योहार रोशनी भरा त्योहार है । ऐसी मान्यता है कि इस दिन माँ लक्ष्मी घर आती है। लक्ष्मी वैभव एवं सुख-समृद्धि का प्रतीक है ।

हमारी परंपरा, हमारे रीति-रिवाज़, हमारे धार्मिक पर्व हमें विशेष बनाते हैं, हमें पहचान दिलाते हैं। सुख-दुख की घड़ियों में साथ जीना सीखाते हैं ताकि परिवार के संबंधों में स्नेह की लौ कम न होने पाए, हृदय में अपनेपन की सुगंध फैलती रहे। ऐसा ही पावन दीपावली का अवसर है जहाँ झिलमिलाते दीपों की रोशनी में हर कोई अपनी खुशियाँ मनाने के साथ-साथ माँ लक्ष्मी

को भी प्यार से मना सके। ऐसी मान्यता है कि विधिपूर्वक सभी सामग्रियाँ जुटाकर माँ लक्ष्मी को प्रसन्न करें तो अवश्य सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

समुद्र मंथन के समय लक्ष्मी के प्रकट होने पर इन्द्र देव ने माता लक्ष्मी का स्तवन किया। इसपर माता लक्ष्मी ने वरदान दिया कि जो भी व्यक्ति मेरी स्तुति नियमित रूप से करेगा, वह कुबेर के समान ऐश्वर्ययुक्त हो जाएगा। इस तरह माता लक्ष्मी का विधान सारे लोक में प्रचलित हुआ। भारतीय संस्कृति में अर्थ की कामना से लक्ष्मी पूजन करने की परंपरा है। दीपावली की रात्रि में लक्ष्मी पूजन का विशेष महत्त्व है -

धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधि कवच।
भवन्त तत्व प्रसादाम्भे धनधान्यादि सर्वदा।।
कुबेर राय नमस्तुभ्यं नानाभंडारा संस्थिता।
यत्रलक्ष्मी मेवेद्देवं धनचितु नमोस्तुते।

माता लक्ष्मी तो सुख का साधन है। आज के फैलते दूषित वातावरण में हमारी संस्कृति की ये निर्मल भावनाएँ मिट न जाएँ, मलिन न हो जाएँ, अतः इस ओर अत्यधिक सतर्कता एवं सावधानी बरतने की आवश्यकता है। अपने पर्वों को धूम-धाम से मनाना और आनंद बटोरना हमारा अधिकार है। इस अधिकार को हाथ से जाने नहीं देना चाहिए।

दीपावली का पर्व श्रृंगार का पर्व है। इसीलिए दीपावली पर्व पर माँ महालक्ष्मी को आकर्षित करने के लिए घर के अंदर-बाहर सजावट, रंगोली, रंग-बिरंगी रोशनी एवं विभिन्न प्रकार की सजावट करने का प्रचलन सदैव बना रहता है।

दीपावली का पर्व सूचक है जीवन में संघर्ष पर विजय का, बुराई पर अच्छाई का। जब रात घनी काली होती है तब मात्र प्रकाश भरा, एक दीपक भी एक आशा भरी किरण की तरह दिखलाई पड़ता है। जब जीवन में दुर्भाग्य की काली छाया हो, तब ही हमें एक आशा भरी किरण की प्रतीक्षा रहती है। अतः दीपावली जीवन में रोशनी लाने का पर्व है। यह पर्व दरिद्रता रूपी अंधकार को समाप्त करने का भी पर्व है।

दीपावली का वास्तविक आनंद इसमें है कि संध्या के घनीभूत अंधकार में चारों ओर अनन्त दीपों की पंक्तियाँ अपने प्रकाश में जगमगा उठती हैं। विज्ञान ने यद्यपि प्रकाश के अनेक अद्भुत साधन समाज को प्रदान किए हैं परंतु तेल भरे दीपों के पंक्तिबद्ध प्रकाश में जो शान्ति और सौन्दर्य है वह बल्बों में नहीं दिखाई देता। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि दीपावली की महान रात्रि में कृत्रिमता से जहाँ तक संभव हो, बचें और दीपों का वास्तविक प्रकाश लाएँ।

दीपावली आने से कई दिन पूर्व ही लोग अपने-अपने घरों को साफ़ करना और सजाना शुरू कर देते हैं। महालक्ष्मी के पूजन का उल्लास दीपावली के अवसर पर हमारे पूरे देश में व्याप्त रहता है। नवीनीकरण के साथ तेजोमय दीप्ति से घर-आँगन, दुकानें, सड़कें सब जगमगा कर लक्ष्मी माता का आह्वान करती हैं। माता महालक्ष्मी पुण्यशालियों के घरों में स्वयं श्री रूप से विराजती हैं। कहा गया है कि वे समस्त विद्याएँ और समस्त नारी शक्ति देवी के भेद ही हैं –

'विद्या: समस्ता: कमला जगतसु '

जितनी हमारी आराधना लगन से की जाएगी, जितनी सात्विक प्रेरणा मिलेगी उतना ही प्रकाश फैलेगा, उतनी ही समृद्धि बढ़ेगी, इस अटल विश्वास के साथ दीपावली के अवसर पर माता लक्ष्मी का आह्वान होता है। हम सब चाहते हैं कि हमारे पास जो लक्ष्मी आए वह हमें छोड़कर न जाएँ, हमें कभी दरिद्र न होने दें। हर किसी की यही इच्छा होती है कि वह धन-धान्य से परिपूर्ण रहे। इसीलिए दीपावली के महान पर्व पर माता लक्ष्मी की आराधना श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए ताकि माता प्रसन्न होकर हम पर अपनी कृपा दृष्टि बनाए रखे। श्रद्धाहीन दीपावली मनाना तो व्यर्थ है।

सुख-सौभाग्य, धन, संपदा और ऐश्वर्य देनेवाली महालक्ष्मी का पूजन सभी मनुष्यों को करना चाहिए। देश और समाज की शक्ति का आधार ऐश्वर्य और धन संपदा है, इन संपदाओं की माता महालक्ष्मी है और उन्हें प्रसन्न किए बिना कोई समाज, कोई देश समृद्धि की प्राप्ति नहीं कर सकता।

सामाजिक व्यवस्था को संतुलित बनाए रखने के लिए चार प्रकार के पुरुषार्थ, धर्म-अर्थ -काम और मोक्ष का निर्धारण किया गया है। ये चारों पुरुषार्थ प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के आवश्यक अंग हैं और एक दूसरे के पूरक हैं।

बदलते युग के साथ व्यक्ति की आवश्यकताएँ बदलीं, मान्यताएँ भी बदल गईं।आज मानव जीवन का केंद्र-बिन्दु अर्थ हो गया है और शेष तीनों पुरुषार्थ अर्थ पर ही आधारित हो गए। आज व्यक्ति की सर्वप्रथम आवश्यकता ही आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना है, उसके पास धन का न होना, सुखद जीवन का अंत ही माना जाता है। ऐसे में धनोपार्जन ही नहीं अपितु समस्त भौतिक संपदा की पूर्ति के लिए दीपावली की महान रात्रि में माता लक्ष्मी के पूजन में नहीं चूकना चाहिए।

त्रेता युग में जब श्री रामचन्द्र जी लंका-विजय के बाद 14 वर्षों का वनवास पूरा करके अयोध्या लौटे तब उनके स्वागत की खुशी में अयोध्या-निवासियों ने रोशनी करके उत्सव मनाया था।

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं और सत्य से ही धर्म की रक्षा की जा सकती है। जीवन के लिए जहाँ शिष्टता, शील, नम्रता, उदारता आदि गुण आवश्यक बताए गए हैं उनमें सत्यता का सर्वप्रथम स्थान है। अन्य गुणों से मनुष्य को केवल लौकिक मान-मर्यादा ही प्राप्त होती है, परंतु सत्य भाषण करनेवाला ही सत्य स्वरूप परमात्मा को जान सकता है। सत्य भाषण मानव-जीवन के सभी आदर्श गुणों में शिरोमणि है। सत्य भाषण सबसे बड़ी तपस्या है। संत कबीर कहते हैं –

'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप।।

संसार संघर्ष की भूमि है। यहाँ मनुष्य को उन्नति के लिए, अपने स्थायित्व के लिए पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है। परंतु जीत उसकी होती है जो सत्य के पथ पर होता है, सत्य भाषण करता है। झूठ बोलने वाले की कभी विजय नहीं होती। इसलिए संसार में उन्नति, उत्कर्ष और उत्थान प्राप्त करने के लिए सत्यवादी होना परम आवश्यक है। यही संदेश भारत के प्रधान मंत्री माननीय नरेंद्र मोदी जी ने 24 अक्टूबर 2022 को दीपावली की महान रात्रि पर दिया था। दीपावली के महान उत्सव पर भारत के अयोध्या गाँव में सरयू नदी के तट पर, लोगों ने 1.5 करोड़ चिराग जलाकर उस स्थल को उसी तरह जगमगा दिया था जिस तरह त्रेता युग में अयोध्यावासियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के वनवास से लौटने पर पूरे अयोध्या में दीये जलाकर अपने प्रभु के मार्ग में प्रकाश भर दिया था। दीपावली का महान पर्व असत्य पर सत्य की विजय का संदेश है। माननीय नरेंद्र मोदी जी ने अपने सम्बोधन *'सत्यमेव जयते, नानृत्तम' से सबको मोहित कर दिया था। उनका कहना था कि 'अयोध्या नगरी दीपों से दीप्त है, भावनाओं से दीप्त है, राम भक्तों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि आज का दिन भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के स्वर्णिम अध्याय का प्रतिबिंब है।' अपने उद्बोधन में उन्होंने यह भी बताया कि भारत के आदर्श के जीवन मूल्य जहाँ नज़र आते हैं वहाँ दीपावली की ज्योति जगमगाती है। रात के ललाट पर रश्मियाँ एक-एक दीपक के रूप में सतत प्रकाशित होती हुई भारत के आध्यात्मिक संदेश का विस्तार कर रही हैं। अपने उद्बोधन में उनका यह कथन था कि प्रभु राम का अमृत काल सभ्यता और संस्कृति के वाहक का काल था। सत्य के हर विजय को मानवीय संदेश के रूप में जीवंत रखा जाए। भारत के मूल मंत्र 'सत्यमेव जयते' की उद्घोषणा करते हुए उन्होंने*

प्रभु राम की अलौकिकता को जीवन में बसाने का उपदेश दिया । सत्य बोलने वाले को न कोई भय और न कोई चिंता होती है क्योंकि वह जानता है कि साँच को कभी आँच नहीं आती ।

इसी सत्य की रक्षा के लिए महाराज दशरथ ने अपने प्राणों से भी प्रिय पुत्र श्री राम को वन जाने का आदेश दिया था, भले ही इस दुख में उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े । परंतु इस गर्वोक्ति की रक्षा उन्होंने अवश्य की –

रघुकुल रीत सदा चली आई । प्राण जाए पर वचन न जाए ।

यह पर्व तन-मन को नए उमंग, नए उत्साह से भर देता है । माता लक्ष्मी मनुष्य के सुख की प्राप्ति का साधन है । माता लक्ष्मी सत्य, प्रेम, ईमानदारी और सेवा-भाव से कमाए हुए धन से प्रसन्न होती है । अनुचित तरीकों से अर्जित धन, बीमारी और गलत तरीके से व्यर्थ ही बह जाता है । उससे न यश मिलता है, न प्रतिष्ठा मिलती है, न स्वास्थ्य प्राप्त होता है । इसके विपरीत लक्ष्मी जी के पूजन से धनवान होनेवाले आनंदित रहते हैं । दीपावली का पर्व हमें अंधकार से दूर रखता है क्योंकि यही अंधकार अज्ञानता है ।

प्रकाश ज्ञान का द्योतक है और दीप साधन का प्रतीक । ज्ञान और साधन की साधना के द्वारा ही जीवन और संस्कृति में शील, सौन्दर्य एवं समृद्धि की अधिष्ठात्री माँ महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा की जाती है । दीपक की लौ हमेशा ऊपर की ओर उठती है, जो उन्नति का प्रतीक है । उससे निकला प्रकाश तम को पराजित करता है ।

एक ओर दीपावली सुख-समृद्धि की कामना का त्योहार है, तो दूसरी ओर यह पर्व स्वच्छता-शुचिता से भी जुड़ा है । समृद्धि और सफाई एक-दूसरे के पूरक हैं ।

दीपक में जलनेवाली बत्ती सफ़ेद रंग की होती है और सफ़ेद रंग पवित्रता, सदाचार तथा शान्ति का प्रतीक है । बत्ती स्वयं जलकर दूसरों के समक्ष अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करती है । दीपक में पड़नेवाला तेल जहाँ स्नेह का प्रतीक है, वहीं मिट्टी का दीपक स्वयं संरक्षक के रूप को प्रतिबिंबित करता है ।

मेरी हिन्दी, मेरी पहचान

- कविराज बाबू

मेरी हिन्दी, मेरी मान।
मेरी हिन्दी, मेरी पहचान॥

बचपन से ही हिन्दी के प्रति, हृदय में था प्यार समाया।
तय कर लिया था मन-ही-मन, बनूँगा मैं हिन्दी का ही साया॥

जीवन में हिन्दी के आने से, चमका मेरा भाग्य सितारा।
मिल गया सब कुछ मानो, बस पाकर हिन्दी का सहारा॥

हिन्दी से नाता जोड़कर, चरित्र अपना मैंने सँवारा।
देती न साथ हिन्दी यदि, तो नष्ट हो जाती मेरी काया॥

हिन्दी का ही तो है यह प्रताप, जिससे मैं आगे बढ़ पाया।
पड़ा रहता किसी कूप में मैं भी, न होता अगर इसने मुझे संभाला॥

आज यदि साहित्य प्रिय है मुझे, तो इसका श्रेय है हिन्दी को जाता।
धर्म-संस्कृति के प्रति लगाव मेरा, हिन्दी के बिना सम्भव न हो पाता॥

इस भाषा को शीश धरूँ मैं, बनता है परम कर्त्तव्य मेरा।
इस पर कोई आँच न आने दूँ, यही जीवन का है लक्ष्य मेरा॥

मेरी हिन्दी, मेरी मान।
मेरी हिन्दी, मेरी पहचान॥

जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम्हें परेशान करने लगे तब तुम स्वयं को निम्नलिखित कसौटी पर परखो :

उस गरीब से गरीब और कमज़ोर से कमज़ोर व्यक्ति का चेहरा याद करो जो तुम्हारी नज़र से गुज़रा हो और फिर खुद से पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो, क्या उससे उस व्यक्ति का कुछ भला होगा..'

- महात्मा गांधी

ISSN 1694-4100

Vasant 157, June 2023
Designed & Printed at the Publishing & Printing Department
Mahatma Gandhi Institute, Moka - Republic of Mauritius.